शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष:7 अंक:36 (मूल क्रमांक 93)
जुलाई-अगस्त 2014 मूल्य: ₹ 30.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर
रश्मि पालीवाल
सहायक सम्पादक
पारुल सोनी
अम्बरीष सोनी
विनता विश्वनाथन
सम्पादकीय सहयोग
सुशील जोशी
रुस्तम सिंह
उमा सुधीर
आवरण
राकेश खत्री
प्रोडक्शन एवं डिज़ाइन
कनक शशि
कमलेश यादव
इन्दु नायर
वितरण
झनक राम साहू

शैक्षणिक
संदर्भ
शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
वर्ष:7 अंक:36 जुलाई-अगस्त 2014
(मूल क्रमांक 93)
एक प्रति का मूल्यः ₹ 30.00

सम्पादन एवं वितरण
एकलव्य, ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी,
शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल, म. प्र. 462 016
फोन : 0755 - 255 1109, 267 1017
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन- sandarbh@eklavya.in
वितरण- circulation@eklavya.in

सदस्यता	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
व्यक्तिगत	150 रुपए	400 रुपए	2500 रुपए
संस्थागत	300 रुपए	750 रुपए	5000 रुपए

मुखपृष्ठः एकैरस सीरो (आटे में पाया जाने वाला कीड़ा) का कम्प्यूटर द्वारा रंगीन किया गया इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपिक फोटोः प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी 1000 गुना आवर्धन की क्षमता रखते हैं पर अगर इसके भी आगे जाना हो तो क्या? वैज्ञानिकों ने पाया कि सूक्ष्मदर्शी की आवर्धन क्षमता की सीमा इस्तेमाल किए जा रहे प्रकाश के तरंग-दैर्ध्य से निर्धारित होती है। इसी आधार पर इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी बने हैं। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के विज्ञान को समझाता हुआ *लेख पृष्ठ 13 पर*।

पिछला आवरणः पॉल ऑक्टोपस का फोटोग्राफः 2010 के फुटबॉल वर्ल्ड कप में जर्मनी के इस ऑक्टोपस द्वारा की गई तथाकथित सटीक भविष्यवाणियों ने सभी को अचम्भित कर दिया था। इसके बाद कई सारी बहसें और विमर्श एक साथ शुरू हो गए थे। क्या ऑक्टोपस जैसे जीवों में ज्ञान और समझ का वह स्तर होता है कि वे ऐसी भविष्यवाणियाँ कर सकें? यह किसी ट्रेनिंग का कमाल था या फिर कुछ गणित, या फिर केवल संयोग? इस पर पढ़िए सवालीराम का जवाब *पृष्ठ 21 पर*।

लिंकः **मुखपृष्ठः** http://sadhillnews.com/wp-content/uploads/2010/09/mite.jpg
आवरण 4: http://www.theguardian.com/football/2011/apr/07/paul-octopus-euro-2012-pavlik

इस अंक में उन सब चित्रों के स्रोत जिनके बारे में चित्र या लेख के साथ उल्लेख नहीं है, इंटरनेट की विविध वेबसाइट हैं।

सुतली और हुनर का मेल!

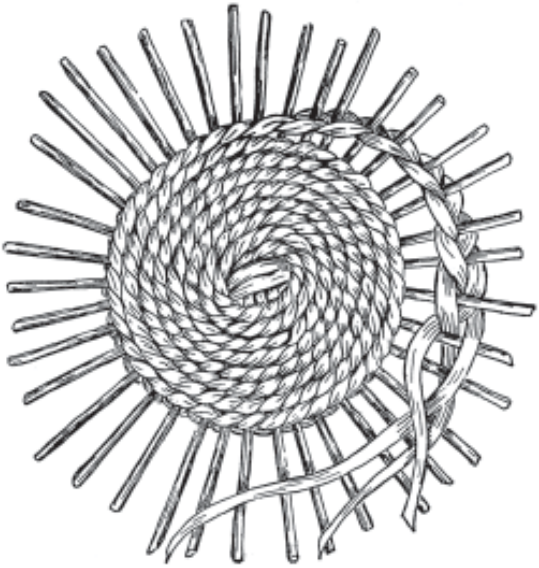

जैसे - संदर्भ

एक प्रति का मूल्य 30 रुपए
एक साल की सदस्यता 150 रुपए
तीन साल की सदस्यता 400 रुपए

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

एकलव्य
ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी, शंकर नगर,
शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. पिन 462016
फोनः 0755 - 2671017, 2550976
www.eklavya.in/sandarbh
ई-मेलः sandarbh@eklavya.in

27

किसे कहते हैं विज्ञान?

विज्ञान का जो स्वरूप आज हम देख रहे हैं वह एक लम्बी दूरी तय करके यहाँ तक पहुँचा है। जानना कि 'कैसे' और जानना कि 'क्यों'। दोनों की विज्ञान की प्रगति में भूमिका है। ज्ञान के इन दोनों प्रकारों में प्रयोगों की क्या भूमिका होगी? विज्ञान का अहम पहलू है इसकी प्रकृति। आखिर सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया की प्रकृति क्या है?

सुकरात और उनके बाद के यूनानी दार्शनिकों द्वारा स्थापित परम्परा ने कार्य-कारण सम्बन्ध के आधार पर तर्कसंगत निष्कर्ष को प्रधानता दी। अरस्तू अनुभवसिद्ध सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाले अपने समकालीन यूनानी दार्शनिकों में अलग खड़े दिखाई देते हैं। बेकन के विचार में अनुभव आधारित प्रेक्षण यानी अवलोकन तथा विधिवत, व्यवस्थित प्रयोग के माध्यम से ही किसी परिकल्पना (हाइपॉथिसिस) को उपयुक्त ढंग से परखा जा सकता है - तो विज्ञान की प्रकृति अवलोकनों और प्रयोगों की ओर बढ़ने लगी जिसे परखा जा सके।

47

समझकर पढ़ना सीखना

बच्चे अपने घर की बोलचाल की भाषा यानी मातृभाषा को बोलना बहुत ही जल्दी सीख जाते हैं। यहाँ तक कि वे भाषा की ध्वनि संरचना के जटिल नियमों को स्वयं ही, बिना किसी के सिखाए, सीख लेते हैं और पूर्ण रूप से अपनी मातृभाषा आत्मसात करने के बाद ही स्कूल में प्रवेश करते हैं। जब बात पाठ्यपुस्तकों में लिखे हुए को पढ़ने और समझने की आती है तो ज़्यादातर बच्चे ऐसा नहीं कर पाते।

शुरुआती कक्षाओं के लिए हमारी स्कूली किताबों के पाठ्य के साथ समस्या यह है कि वह ज़्यादातर बच्चों के सन्दर्भ से परे होते हैं जिसके कारण बच्चे उन्हें अपनी सोच या अनुभवों का हिस्सा नहीं बना पाते और उनको समझने में सक्षम नहीं हो पाते। हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे न केवल यह समझें कि वे क्या पढ़ रहे हैं बल्कि उन्हें पढ़ने में मज़ा आए और वे समझ से पढ़ने वाले सक्रिय, चिन्तन-शील और उत्साही पाठक बन सकें।

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-36 (मूल अंक-93), जुलाई-अगस्त 2014

इस अंक में

4 | **आपने लिखा**

7 | **परमाणु के बिखरते कण - भाग 3**
सुशील जोशी

13 | **इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी**
भास बापट

21 | **फुटबॉल वर्ल्डकप में ऑक्टोपस की भविष्यवाणी**
सवालीराम

27 | **किसे कहते हैं विज्ञान? - भाग 1**
रॉबिन डनबार

37 | **पाठ्यक्रम का देसीकरण - भाग 2**
पद्मा सारंगपाणी

47 | **समझकर पढ़ना सीखना - भाग 1**
कीर्ति जयराम

58 | **नन्ही तितली को उड़ना कौन सिखाता है?**
रेखा चमोली

63 | **खेल-खेल में व्याकरण**
श्रीदेवी वेंकट

67 | **बोरगाँव का भीमा**
मुकेश मालवीय

73 | **दुश्मन मेमना - भाग 1**
ओमा शर्मा

90 | **रियो के साथ कुछ और प्रयोग**
किशोर पंवार

आपकी लेखनी बढ़ाती है हमारा हौसला!!

प्रिय पाठको,

हमें उम्मीद है कि आपको 'संदर्भ' समय पर मिल रही होगी और आप इसे ज़रूर उलटते-पलटते होंगे। हमारा यह पत्र खास तौर पर उन शिक्षकों के लिए है जिन तक हम पहुँच पा रहे हैं और उनके लिए भी जिन तक आप पहुँच रहे हैं।

हमारे पुराने पाठक इस बात से शायद वाकिफ होंगे कि 'संदर्भ' पत्रिका की शुरुआत 1994 में हुई और तब से यह लगातार प्रकाशित हो रही है। यह वो दौर था जब होशंगाबाद साइंस टीचिंग प्रोग्राम (होविशिका) चल रहा था। होविशिका के दौरान एकलव्य मध्य प्रदेश के 15 ज़िलों के लगभग 1000 स्कूलों में काम कर रहा था। उस दौर में तकरीबन 2000 साथी शिक्षकों का साथ मिला है हमें। उन्हीं दिनों 'शैक्षणिक संदर्भ' की अवधारणा को मूर्त रूप दिया गया जो होविशिका एवं एकलव्य के अन्य शैक्षणिक कार्यक्रमों से निकलने वाली जिज्ञासाओं और सवालों पर विमर्श व जानकारी का एक मंच बना। 'संदर्भ' के लेखों ने हमेशा ही स्कूली पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाने का काम किया है। हमने सदैव सीखने-सिखाने को सबकी मिली-जुली प्रक्रिया माना है और इस नाते हमें अपने हर पाठक से इस काम में हिस्सेदारी की ज़रूरत एवं अपेक्षा है।

शुरुआत से ही 'संदर्भ' पत्रिका के पाठकों में शिक्षकों का एक बड़ा वर्ग रहा है। शिक्षकों ने लेख लिखकर इसके सामग्री निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हम चाहते हैं कि यह सिलसिला आगे भी यूँ ही चलता रहे।

हम चाहते हैं कि आप लिखें क्योंकि:

- शिक्षक खुद के काम एवं बच्चों के ज़रिए समाज के ज़्यादातर पहलुओं से सीधे रूबरू होते हैं।
- शिक्षण कार्य के दौरान शिक्षक रोज़ ही पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या की अपने सन्दर्भों में व्याख्या करते हैं, उन्हें ट्रांज़ैक्ट करने के नए-नए तरीके ढूँढ़ते व उन्हें इस्तेमाल करते हैं। हम चाहते हैं कि वे तरीके व अनुभव औरों तक भी पहुँचें।
- कक्षा के दौरान कई ऐसे वाकये अक्सर ही होते रहते हैं जिन्हें आप दूसरों के साथ साझा करना चाहेंगे - कुछ नया, कुछ मज़ेदार, कभी सवाल, कभी दुविधाएँ...।
- पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 और शिक्षा का अधिकार कानून के बाद शिक्षण व्यवस्था एवं प्रक्रिया में कई बदलाव आए हैं। इन बदलावों के तात्कालिक और दूरगामी परिणाम होंगे

और उनके बारे में आप शायद बेहतर जानते हैं। इसलिए हम चाहते हैं कि आप इनसे सम्बन्धित अपने अनुभवों को सबसे साझा करें।

विभिन्न कार्यक्रमों के दौरान जब भी हमारा शिक्षकों, छात्रों, शोधकर्ताओं आदि से मिलना होता है, तो हमसे यह सवाल अक्सर पूछा जाता है कि 'संदर्भ' के लिए हम **क्या लिखें?** और **कैसे लिखें?**

क्या लिखें?

आइए शुरुआत हम पहले सवाल से ही करते हैं कि आखिर क्या लिखा जाए।

जैसा कि आप जानते हैं, 'संदर्भ' में विज्ञान की विविध शाखाओं भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान से लेकर गणित, भाषा, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, शिक्षणशास्त्र से लेकर लायब्रेरी संचालन, और आपके विविध शैक्षिक अनुभवों आदि अनेकों विषयों पर लेख छपते हैं। हमारे लेखकों में भी बहुत विविधता है। शिक्षक, भाषाविद्, कॉलेज के प्रोफेसर, विषयों के विशेषज्ञ और इनके साथ ही पालक, विद्यार्थी और सामान्य पाठक इत्यादि। अतः आप अपनी रुचि और अनुभव के क्षेत्र को ध्यान में रख लेख लिखकर हमसे साझा कर सकते हैं। हाँ, इतना ज़रूर ध्यान रखना है कि हमारी पत्रिका का पाठक-वर्ग प्रमुखतः मिडल और हाई स्कूल के विद्यार्थी और शिक्षक हैं।

कैसे लिखें?

एक बार यह तय कर लिया कि किस विषय पर लिखना है तो अब अगला सवाल आ टपकता है कि आखिर लिखें कैसे। यह सवाल अक्सर हमारे पास विषय और रुचि रहने के बावजूद हमें लेख लिखने से रोक देता है। पर हम चाहते हैं कि आप यहाँ न रुकें और बेझिझक अपना लेख हमें लिख भेजें।

हमारे एक वरिष्ठ अनुभवी सम्पादक का मानना है कि हमारा लेख लिखना वास्तव में लेख के अन्दर छुपे कुछ सवालों के जवाब देना है। हर लेख, चाहे वो किसी भी विषय पर लिखा जाए, किसी भी शैली में लिखा जाए अपने अन्दर कुछ सहज-से सवाल जैसे क्या, क्यों, कैसे आदि लेकर चलता है और हम इनका जवाब देते हुए लेख को आगे बढ़ा रहे होते हैं।

हमें ध्यान रखना है कि लेख की शुरुआत से लेकर आखिरी तक की लाइन के बीच आपस में एक जुड़ाव बना रहे। अपने विषय से ज़्यादा न भटकें बल्कि उसके इर्द-गिर्द ही बने रहने का प्रयास करें। कोशिश करें कि शुरू में दो विषयों को न मिलाएँ, चाहें तो दो विषयों पर दो अलग लेख बना लें।

तो हमें आपके लेख का इन्तज़ार रहेगा!

आपने लिखा

शैक्षणिक संदर्भ अंक 92, मई-जून 2014 में प्रकाशित अनिल सिंह का आलेख 'शिक्षण में थिएटरः एक अनुभव' बेहद मर्मस्पर्शी और पठनीय रहा। बच्चों के लिए तरह-तरह की आवाज़ें, शारीरिक मुद्रा, भावमुद्रा, दृश्य संयोजन, वस्तुओं का रचनात्मक इस्तेमाल, त्वरित संवाद रचना, डायलॉग डिलेवरी आदि बिन्दु गम्भीरता से पढ़ने को प्रेरित करते हैं। इस आलेख को पढ़ने पर एक खूबसूरत बात निकलकर सामने आई कि शिक्षकों को पाठ्यक्रम की डिलेवरी में काफी ध्यान देना होगा। शिक्षक साथियों को ध्यान रखना होगा कि शिक्षा के माध्यम से जिस तरह सर्वांगीण विकास की परिकल्पना की जाती है, जिसके माध्यम से जीवन-आधारित कौशल का उपागम हमें थियेटर के माध्यम से दिखाई देता है, फलीभूत हो। अगर मैं अपनी शिक्षकीय जीवन की शैक्षणिक गतिविधियों की बात करूँ तो मैंने हिन्दी और पर्यावरण अध्ययन में नियमित कक्षा 1 से 10 तक थियेटर को प्रधानता देने की पुरज़ोर कोशिश की है। इसका व्यापक प्रभाव बच्चों की शिक्षण अभिरुचि और अधिगम पर स्पष्ट दिखाई देता है। बच्चों की अभिव्यक्ति क्षमता के लिए इस तरह की विधियों को प्रोत्साहन मिलना ही चाहिए क्योंकि मौलिक अभिव्यक्ति के विकास का आधार नाट्य कला भी हो सकती है। इस बेहतरीन आलेख के लिए अनिल जी को बधाई ।

'बचपन से...बचपन तक...' संघमित्रा आचार्य लिखित आलेख में एक तरह से बच्चों के लिए रचनात्मकता की स्वीकारोक्ति का अपनापन दिखाई देता है। इस आलेख में प्रतिक्रियाएँ और भागीदारी, अपनी मर्ज़ी से खींची तस्वीर, तस्वीरों की प्रदर्शनी, कुछ यादें, कुछ सवालों ने बच्चों को बच्चों की नज़र से देखने का मौका दिया। एनसीएफ 2005 के सन्दर्भों में भी देखें तो स्वतंत्र अभिव्यक्ति को बल दिया गया है। इस आधार पर विद्यालय तथा घर आज के स्वरूप में ठीक विपरीत चलते हुए दिखाई देते हैं। आज के इस दौर में जिस तरह की प्रैक्टिस दिखाई देती है इस पर हमें विचार करना ही होगा ताकि शिक्षा को गुणात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिए रचनात्मक अभिव्यक्ति को शिक्षण विधियों में शामिल किया जा सके। इस आलेख के आधार पर एक बात और महत्वपूर्ण लगी कि महँगी चीज़ हमेशा बच्चों से दूर रखना चाहिए, इस आम समझ पर आलेख ने सवाल खड़ा किया है। 'शैक्षणिक संदर्भ' की पूरी टीम को हार्दिक बधाई।

नरेन्द्र साहू,
अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन,
धमतरी, छत्तीसगढ़

परमाणु के बिखरते कण

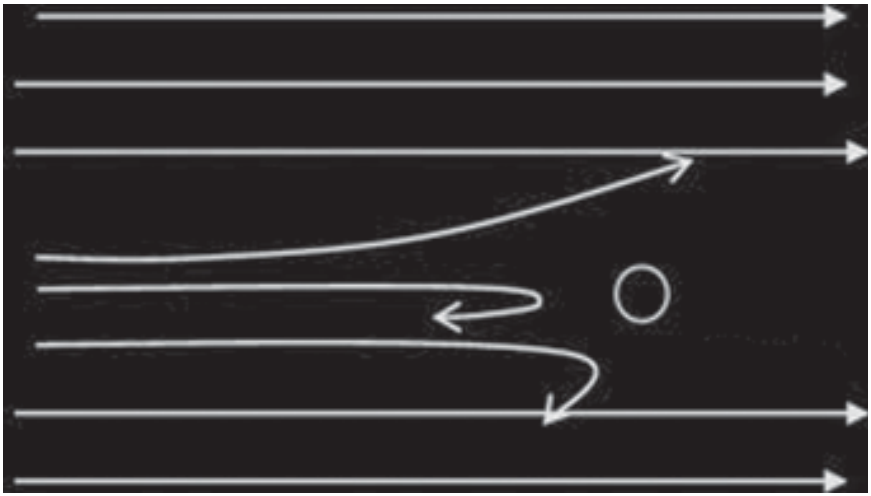

सुशील जोशी

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में हेनरी बेकेरल रेडियोधर्मी पदार्थों का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने देखा कि ये रेडियोधर्मी पदार्थ बगैर किसी बाहरी ऊर्जा के विकिरण छोड़ते रहते हैं। खास तौर से यह देखा गया कि भारी धातुएँ खुद होकर विकिरण उत्सर्जित करती रहती हैं। जब अर्नेस्ट रदरफोर्ड ने इस विकिरण का अध्ययन किया तो पाया कि इसमें दो तरह के विकिरण होते हैं। उन्होंने इन्हें कण माना था और दो तरह के कण पहचाने थे। कुछ कण ऐसे थे जो किसी पदार्थ में काफी गहराई तक घुस पाते थे, इन्हें रदरफोर्ड ने 'बीटा कण' कहा जबकि उन कणों को 'अल्फा कण' कहा जो पदार्थों में बहुत गहराई तक घुस नहीं पाते थे।

1900 में बेकेरल ने दर्शाया कि बीटा किरणें विद्युत क्षेत्र में विचलित हो जाती हैं और उनके द्रव्यमान-आवेश अनुपात के आधार पर बताया कि वे कैथोड किरणों के समान हैं। दूसरे शब्दों में ये इलेक्ट्रॉन थे। आगे चलकर रॉबर्ट मिलिकन और हार्वे फ्लेचर ने इलेक्ट्रॉन्स के आवेश का सटीकता से मापन किया। इसके लिए उन्होंने तेल की बूँद का उपयोग किया था। उन्होंने किया यह था कि तेल की अत्यन्त महीन बूँद को आवेशित करके

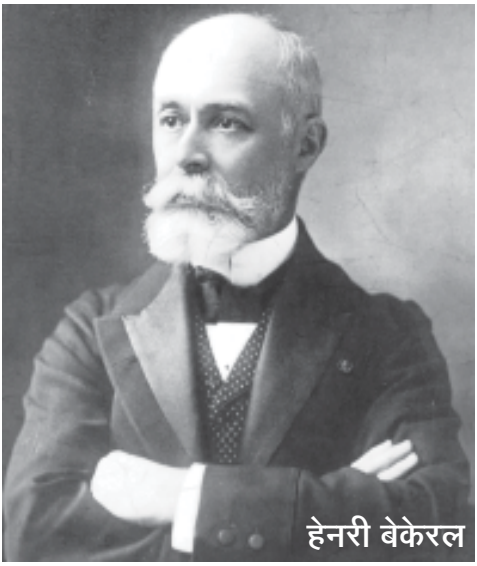
हेनरी बेकेरल

उसे अपने वज़न से गिरने को मुक्त कर दिया। इसके बाद उस बूँद के इर्द-गिर्द एक विद्युत क्षेत्र निर्मित किया और विद्युत क्षेत्र की तीव्रता इतनी रखी कि वह उस आवेशित बूँद को गिरने से रोकने के लिए पर्याप्त हो। इसके आधार पर वे आवेश की काफी अच्छी गणना कर पाए।

अब बारी आई अल्फा कणों की। पता चला कि इनका आवेश धनात्मक था जिसका परिमाण बीटा कणों के बराबर था, मगर द्रव्यमान बहुत अधिक था - हीलियम के परमाणु के बराबर। चूँकि ये कण धनावेशित थे इसलिए इनमें रुचि पैदा होना स्वाभाविक था। आखिर ऋणावेशित इलेक्ट्रॉन की खोज के बाद धनावेशित कणों की खोज हो जाती तो तस्वीर पूरी हो जाती।

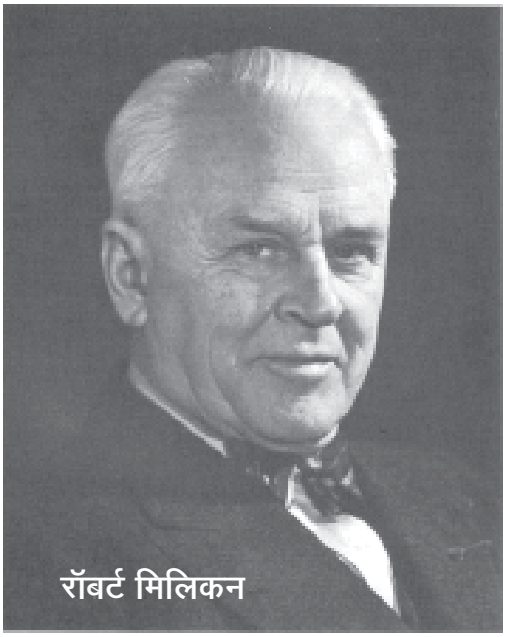
रॉबर्ट मिलिकन

रदरफोर्ड ने अल्फा कणों पर ध्यान केन्द्रित किया। वे देखना चाहते थे कि ये अल्फा कण पदार्थों के साथ कैसी अन्तर्क्रिया करते हैं। तो उन्होंने गाइगर के साथ मिलकर एक प्रयोग तैयार किया जो अब विज्ञान के एक आदर्श प्रयोग के रूप में याद किया जाता है।

उन्होंने सोने का एक वर्क लिया। इसकी मोटाई 0.00004 से.मी. थी। उनका इरादा यह था कि इस पर अल्फा कणों की बौछार करेंगे और देखेंगे कि उन पर क्या असर होता है। दरअसल इसके ज़रिए वे भारी धातुओं (जिनमें से अल्फा कण निकलते हैं) के परमाणुओं के बारे में कुछ सुराग पाना

तेल की बूँदों वाला प्रयोग

मिलिकन के प्रयोग का सिद्धान्त अत्यन्त आसान है। तेल की महीन बूँदों को मुक्त रूप से गिरने दिया जाए तो वे एक अन्तिम वेग हासिल कर लेंगी। इस अन्तिम वेग को टर्मिनल वेग कहते हैं। यदि यह क्रिया एक ऐसे प्रकोष्ठ में की जाए, जिसमें हवा के झोंके न हों, तो ये बूँदें मात्र गुरुत्वाकर्षण और स्थिर हवा द्वारा आरोपित उछाल बल के कारण चन्द मिलीमीटर प्रति सेकण्ड का टर्मिनल वेग हासिल कर लेती हैं। टर्मिनल वेग का मापन करके इनका द्रव्यमान निकाला जा सकता है।

फिर इसी बूँद को आवेशित कर दिया जाता है। अब एक विद्युत क्षेत्र निर्मित करके इन्हें ऊपर की ओर धकेला जा सकता है। जब गुरुत्व बल और विद्युतीय बल बराबर हो जाएँ (यानी बूँद हवा में एक ही जगह पर तैरती रहे) तब बूँद पर आवेश की गणना की जा सकती है। गुरुत्व बल mg होगा और विद्युत क्षेत्र की वजह से लगने वाला बल Eq होगा। निलम्बन की स्थिति में mg = Eq. इसमें m बूँद का आभासी द्रव्यमान (वास्तविक द्रव्यमान-उछाल बल), g गुरुत्व बल, E विद्युत क्षेत्र की शक्ति और q बूँद पर आवेश की मात्रा है।

यह ज़रूरी नहीं है कि किसी बूँद पर आवेश एक ही होगा। मगर मिलिकन ने पाया कि बूँद पर न्यूनतम आवेश 1.60×10^{-19} कूलंब है। इससे अधिक आवेश वाली बूँदों पर आवेश की मात्रा इस मान का कोई गुणज (3.20×10^{-19}, 4.80×10^{-19}, 6.40×10^{-19}, 8.00×10^{-19} कूलंब) थीं।

चित्रः तेल की बूँदों वाले प्रयोग में उपयोग किया गया एक उपकरण। वर्तमान समय में यह साइंस एंड इंडस्ट्री म्यूज़ियम, शिकागो में रखा है।

चाहते थे। उन्होंने एक ऐसी जुगाड़ जमायी जिसमें भारी धातु के एक टुकड़े को सीसे के ब्लॉक में बन्द कर दिया जिसमें एक ही सुराख था। अल्फा कण इसी सुराख में से निकल सकते थे क्योंकि सीसे की मोटी परत अल्फा कणों को सोख लेती है।

ये अल्फा कण सोने की 0.00004 से.मी. मोटी झिल्ली से टकराते थे। उम्मीद थी कि ये उस परत को चीरते हुए निकल जाएँगे। तो सोने की झिल्ली के दूसरी तरफ उन्हें एक ऐसी जुगाड़ जमानी थी कि जब अल्फा कण सोने के पर्दे में से दूसरी ओर निकलें तो

चित्र: 1

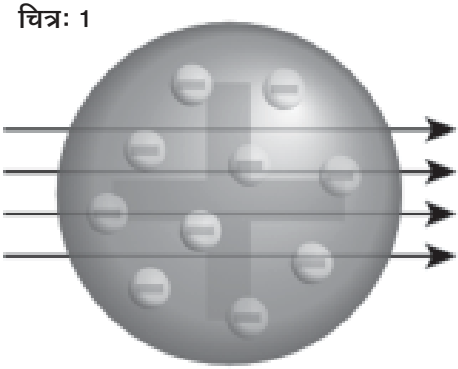

चित्र: 2

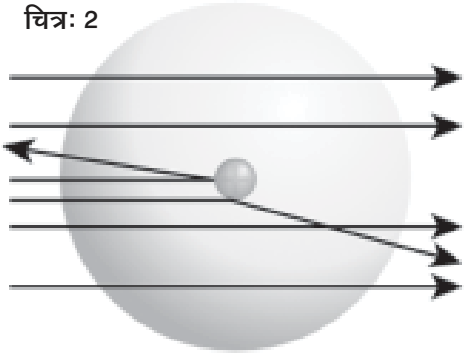

सोने के वर्क वाला प्रयोग: रदरफोर्ड और गाइगर ने सोने का बेहद पतला वर्क लिया और इस पर अल्फा कणों की बौछार कर देखने की कोशिश की कि अल्फा कणों पर क्या असर होता है। चित्र-1 वाले परमाणु मॉडल में अल्फा कण वर्क के पार चले जाएँगे। लेकिन रदरफोर्ड ने देखा कि सोने के पर्दे में से गुज़रते वक्त अल्फा कण थोड़े विचलित हुए (चित्र-2)। इस आधार पर उन्होंने चित्र-1 वाले मॉडल को खारिज किया। (दोनों चित्र सिर्फ समझ के लिए हैं)

उन्हें 'देखा' जा सके। रदरफोर्ड और गाइगर ने काफी प्रयोगों के बाद पाया कि ज़िंक सल्फाइड पुता एक पर्दा लगाया जाए तो हर बार अल्फा कण के टकराने पर सम्बन्धित बिन्दु पर एक चमक पैदा होती है। तो सोने के पर्दे के दूसरी ओर उन्होंने ज़िंक सल्फाइड का एक पर्दा लगा दिया।

अब पूरा प्रयोग तैयार था। इस पूरे उपकरण को एक अँधेरे कमरे में रखा गया और रदरफोर्ड व गाइगर घण्टों वहाँ बैठकर ज़िंक सल्फाइड पर अलग-अलग बिन्दुओं पर पैदा होने वाली चमक को रिकॉर्ड करते थे।

अन्ततः जो परिणाम प्राप्त हुए वे आशा के अनुरूप ही थे। सारे अल्फा कण ज़िंक सल्फाइड के पर्दे पर लगभग एक छोटे-से वृत्त के दायरे में ही पहुँचे थे। रदरफोर्ड को यही उम्मीद थी कि सोने के पर्दे में से गुज़रते वक्त अल्फा कण सोने के परमाणुओं से टक्करों के कारण थोड़े विचलित होंगे मगर विचलन ज़्यादा-से-ज़्यादा 1 डिग्री का होगा। और यही हुआ भी। मगर आपने रदरफोर्ड के इस प्रयोग का जो विवरण पाठ्य पुस्तकों में पढ़ा था, वह सम्भवतः ऐसा नहीं था।

वास्तव में जब रदरफोर्ड और गाइगर ने यह प्रयोग किया था तो परिणाम ऐसे ही थे। विज्ञान की कहानियाँ उतनी नाटकीय या रोचक नहीं होतीं जितना उन्हें बना दिया जाता है।

एक दिन गाइगर ने रदरफोर्ड को बताया कि अर्नेस्ट मार्सडेन नाम के

एक शोध-छात्र को एक प्रोजेक्ट करना है। रदरफोर्ड का जवाब था, "क्यों न मार्सडेन उसी प्रयोग को दोहराकर यह देखने की कोशिश करे कि कोई अल्फा कण ज़्यादा विचलित तो नहीं होता?"

जब मार्सडेन ने प्रयोग किया तो ज़िंक सल्फाइड का पर्दा सिर्फ सोने की झिल्ली के पीछे नहीं बल्कि चारों तरफ लगाया गया। मार्सडेन ने पाया कि कुछ कण (20,000 में से 1) 90 डिग्री से भी ज़्यादा कोण से विचलित होते हैं। इन परिणामों के बारे में रदरफोर्ड ने कभी कहा था, "यह मेरे जीवन की सबसे अविश्वसनीय घटना थी। यह तो लगभग ऐसा था कि आप एक 15 इंची हथगोला एक टिशू पेपर पर मारें और वह लौटकर आपको ठोंक दे।"

खैर, वे कितने ही चकराए हों मगर इस परिणाम का निहितार्थ समझने में उन्होंने देर नहीं की।

उनका निष्कर्ष था कि इन परिणामों की व्याख्या एक ही तरीके से की जा सकती है। आपको मानना होगा कि परमाणु का सारा धनावेश और द्रव्यमान बहुत थोड़ी-सी जगह में घनीभूत है। इसे उन्होंने केन्द्रक कहा। बस हमें इतना ही बताया जाता है। यह विज्ञान की एक रोमांटिक, संयोगवश खोजों की और अन्तर्दृष्टि पर आधारित छवि को पुष्ट करता है।

मगर रदरफोर्ड इतना ही कहते तो बात नहीं बनती। इस मान्यता को लेकर उन्होंने समीकरणें विकसित कीं जिनके आधार पर कुल अल्फा कणों में से किसी एक कोण से विचलित होने वाले कणों की संख्या का पता चल सकता था। इन समीकरणों से उन्होंने यह भविष्यवाणी की कि अल्फा कणों का विचलन सोने के वर्क की मोटाई के समानुपाती होगा और केन्द्रक पर उपस्थित आवेश के वर्ग के समानुपाती होगा। और तो और, वे यह भी गणना कर पाए कि विचलन का कोण अल्फा कणों के वेग की चौथी घात के व्युत्क्रमानुपाती होगा।

रदरफोर्ड

गाइगर और मार्सडेन ने इन तीनों पूर्वानुमानों की जाँच प्रयोगों के माध्यम से की और इन्हें सही पाया।

इस सारी मशक्कत के बाद रदरफोर्ड इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि परमाणु का सारा धनावेश और द्रव्यमान उसके केन्द्र में घनीभूत है। इसे उन्होंने 'केन्द्रक' नाम दिया। उन्होंने यह भी कहा कि परमाणु के कुल आयतन के मुकाबले केन्द्रक का आयतन नगण्य होता है।

रदरफोर्ड के मुताबिक यही कारण है कि अधिकांश अल्फा कण सोने की एक झिल्ली में से आर-पार निकल जाते हैं - उनके रास्ते में कोई ऐसी बड़ी चीज़ नहीं आती कि उन्हें विचलित कर सके। बहुत ही थोड़े-से अल्फा कण केन्द्रक के पास से गुज़रते हैं और केन्द्रक के धनावेश से प्रतिकर्षित होकर ये थोड़े विचलित होते हैं। कभी-कभार ये अल्फा कण जाकर सीधे केन्द्रक से टकराते हैं और 90 डिग्री से अधिक के कोण से विचलित होते हैं।

90 डिग्री या उससे अधिक के कोण से विचलित होने वाले अल्फा कणों की संख्या के आधार पर गणना करके रदरफोर्ड ने केन्द्रक के आकार का एक अन्दाज़ भी लगा लिया था। उनके मुताबिक परमाणु के व्यास की तुलना में केन्द्रक का व्यास 10,000 गुना कम था। गौरतलब है कि इस मॉडल में प्रोटॉन का कहीं ज़िक्र नहीं है, न्यूट्रॉन की तो बात ही जाने दें।

इस सारी जानकारी के आधार पर रदरफोर्ड ने परमाणु संरचना का एक मॉडल प्रस्तुत किया था। इसमें परमाणु में एक अत्यन्त सूक्ष्म धनावेशित केन्द्रक था और इलेक्ट्रॉन उसके आसपास काफी दूरी पर स्थित थे। आप देख ही सकते हैं कि यदि थॉमसन का *तरबूज़ मॉडल* सही होता तो अल्फा कणों के विचलन का ऐसा पैटर्न देखने को नहीं मिल सकता था। उस मॉडल के अनुसार तो धनावेश पूरे परमाणु में एकसार ढंग से बिखरा हुआ था। अतः यदि वह मॉडल सही होता तो होना यह चाहिए था कि परमाणुओं में से गुज़रते हुए सारे अल्फा कण लगभग एक-जैसे धनावेश से टकराते और अपने मार्ग से लगभग एक बराबर विचलित होते या शायद विचलित ही न होते।

तो एक बार फिर नए अवलोकनों के आधार पर परमाणु के मॉडल में सुधार किया गया। इस नए मॉडल में परमाणु के बीचोंबीच एक निहायत सघन केन्द्रक था जिसमें परमाणु का सारा धनावेश स्थित था और इलेक्ट्रॉन केन्द्रक से कुछ दूरी पर उसके चक्कर काटते थे। मगर यह मॉडल भी जल्दी ही भँवर में उलझने वाला था।

(...जारी)

सुशील जोशीः एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी

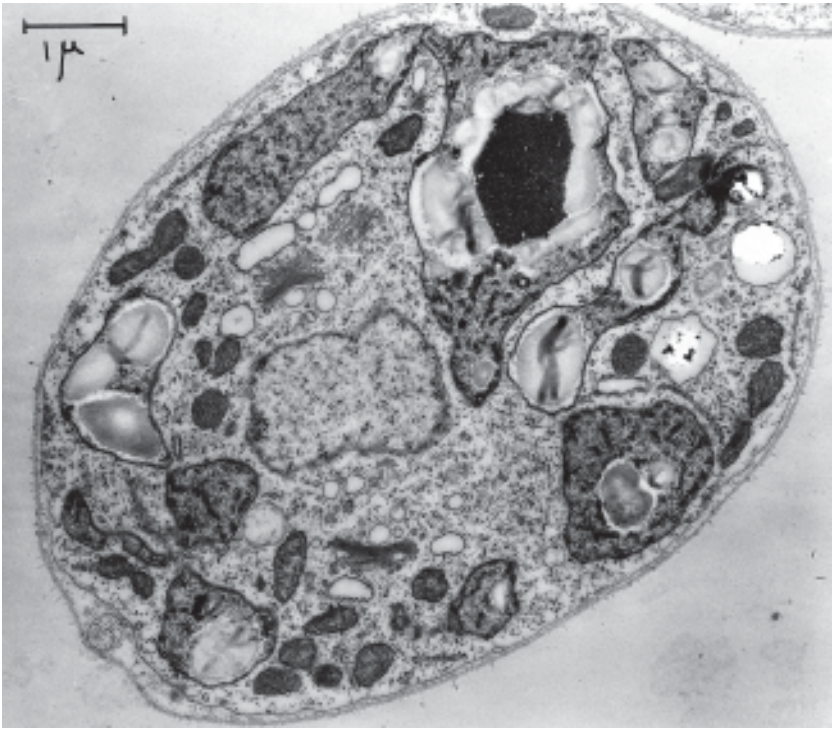

क्लैमाइडोमोनस कोशिका

भास बापट

आप अपनी नंगी आँखों से सबसे छोटी चीज़ कौन-सी देख सकते हैं? बाल के बराबर मोटी? या उससे भी दस गुना बारीक? जी हाँ, यही हमारी दृष्टि की न्यूनतम सीमा है। यह लगभग 20 माइक्रोमीटर है (एक मि.मी. का पचासवाँ हिस्सा) और इससे छोटी चीज़ को हम नहीं देख पाते हैं।

यदि इससे भी छोटी चीज़ों को साफ-साफ देखना चाहें तो हमें सूक्ष्मदर्शी का उपयोग करना पड़ता है। सूक्ष्मदर्शी और कुछ नहीं लेंसों की एक व्यवस्था होती है जो वस्तु का बड़ा प्रतिबिम्ब बना देती है। ऐसे सूक्ष्मदर्शी प्रकाशीय

सूक्ष्मदर्शी कहलाते हैं और ये वस्तु का अधिकतम 1000 गुना बड़ा प्रतिबिम्ब बनाते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी की मदद से हम 200 नैनोमीटर साइज़ की वस्तुओं को देख सकते हैं।

प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी के आगे

परमाणु इससे भी छोटे होते हैं। यदि हम वस्तुओं की परमाणु संरचना को देखना चाहते हैं तो हमें बेहतर व्यवस्था करनी होगी। कोई सूक्ष्मदर्शी कितनी छोटी वस्तु को देखने में मददगार होगा, यह सूक्ष्मदर्शी की गुणवत्ता पर नहीं बल्कि स्वयं प्रकाश के गुणधर्मों पर निर्भर है। प्रकाश की तरंग-लम्बाई लगभग 500 नैनोमीटर होती है। यह समझने की कोशिश करते हैं कि प्रकाश की तरंग-लम्बाई देखी जाने वाली वस्तु की साइज़ का निर्धारण कैसे करती है।

इस बात को एक उपमा की मदद से समझने की कोशिश करते हैं। किसी तालाब या पोखर में उठती तरंगों को देखिए। यदि हम तालाब में फैलती तरंगों के रास्ते में एक छड़ी खड़ी कर दें, तो तरंगों का पैटर्न बिगड़ जाता है। मगर ऐसा तभी होता है जब छड़ की मोटाई तरंगों की अपनी तरंग-लम्बाई के बराबर या उससे ज़्यादा हो। यदि छड़ी (या कोई भी अवरोध) बहुत बारीक है, तो तरंगों के पैटर्न में कोई फर्क नज़र नहीं आएगा। प्रकाश तरंगों के मामले में भी स्थिति कुछ इसी तरह की होती है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि प्रकाश उन्हीं वस्तुओं को स्पष्ट रूप में अलग-अलग दिखा सकता है जिनकी साइज़ सम्बन्धित प्रकाश की तरंग-लम्बाई (ë) की आधी यानी ë/2 हो।

सूक्ष्म लम्बाई की इकाइयाँ

1 ì m (माइक्रोमीटर) = 10^{-6} मीटर
1 नैनोमीटर = 10^{-9} मीटर
1 पाइकोमीटर = 10^{-12} मीटर
1 अंगस्ट्रॉम = 10^{-10} मीटर

प्रकाश की तरंग-लम्बाई द्वारा आरोपित सीमा को तोड़ने का एक तरीका तो यह है कि हम कम तरंग-लम्बाई वाला प्रकाश इस्तेमाल करें। जैसे एक्स-रे की तरंग-लम्बाई सामान्य प्रकाश की अपेक्षा कम होती है। यदि सूक्ष्म वस्तुओं को आवर्धित करने के लिए एक्स-रे का उपयोग किया जाए, तो हम 1 नैनोमीटर के स्तर की वस्तुएँ देख सकते हैं। मगर एक्स-रे के साथ एक दिक्कत यह है कि उसके सन्दर्भ में ऐसे पदार्थ मिलना बहुत मुश्किल हैं जिनका उपयोग लेंस व दर्पण आदि बनाने में किया जा सके। अब सूक्ष्मदर्शी में लेंस वगैरह तो लगेंगे, ना? लिहाज़ा एक्स-रे सूक्ष्मदर्शी अव्यावहारिक है। तो फिर विकल्प क्या है?

इस समस्या का समाधान हो सकता है यदि हम प्रकाश पुंज की जगह इलेक्ट्रॉन पुंज का उपयोग करें। ऐसा करना इसलिए सम्भव है क्योंकि अत्यन्त

सूक्ष्म स्तर पर पदार्थों में एक अजीबो-गरीब गुण पाया जाता है। परमाणु की साइज़ तक पहुँचते-पहुँचते पदार्थ के कण दोहरी प्रकृति दिखाने लगते हैं। वे कणों के रूप में भी व्यवहार करते हैं और तरंगों के रूप में भी।

तो, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन या न्यूट्रॉन जैसे कणों का एक पुंज कुछ परिस्थितियों में उसी तरह व्यवहार करेगा जैसे कि प्रकाश पुंज करता है। इन कणों में द्रव्यमान होता है। ऐसे द्रव्यमान-युक्त कणों से सम्बद्ध तरंगों को पदार्थ-तरंगें कहते हैं।

पदार्थ की इस दोहरी प्रकृति को विक्टर लुई डी ब्रॉइल (Louis de Broglie) ने 1924 में पहचाना था। उनकी इस खोज ने क्वांटम यांत्रिकी के आधुनिक सिद्धान्त का मार्ग प्रशस्त किया था। इस सिद्धान्त ने ऐसे कई सवालों के जवाब प्रदान किए हैं, जो क्लासिकल यांत्रिकी के लिए अबूझ पहेलियाँ बने हुए थे।

डी ब्रॉइल ने सुझाव दिया था कि यदि किसी सूक्ष्म कण का संवेग p है तो उससे सम्बद्ध पदार्थ-तरंग की तरंग-लम्बाई ë = h/p होगी। इस समीकरण में h एक स्थिरांक है जिसे प्लांक स्थिरांक कहते हैं। सरल शब्दों में कहें, तो इन कणों से सम्बद्ध पदार्थ-तरंग की तरंग-लम्बाई उनके संवेग के व्युत्क्रमानुपाती होती है। अर्थात् यदि कण का संवेग अधिक है तो उससे सम्बद्ध पदार्थ-तरंग की तरंग-लम्बाई कम होगी। साधारण ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉन-पुंज की तरंग-लम्बाई एक नैनोमीटर से कम होती है।

ये इलेक्ट्रॉन तरंगें लगभग वही कार्य कर सकती हैं जो प्रकाश तरंगें किसी पदार्थ में से गुज़रते हुए या परावर्तित होते हुए करती हैं। यदि एक इलेक्ट्रॉन-पुंज किसी सतह पर गिरे या किसी महीन झिल्ली में से आर-पार निकले तो मार्ग में आने वाले कण उसे प्रभावित करते हैं। इसका असर यह होगा कि जो इलेक्ट्रॉन-पुंज सतह से टकराकर वापिस आएगा या आर-पार निकलकर किसी पर्दे पर पहुँचेगा उसमें हमें परिवर्तन देखने को मिलेंगे। ये परिवर्तन उस पदार्थ की अन्दरुनी संरचना की वजह से हुए हैं। अतः इन परिवर्तनों का विश्लेषण करके हम पदार्थ की आन्तरिक संरचना के विषय में जान सकते हैं। खास तौर से इलेक्ट्रॉन के मार्ग में जो विचलन होगा उसका सम्बन्ध पदार्थ की सतह की बनावट से जोड़ा जा सकता है।

इलेक्ट्रॉन के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि ये आवेशित कण होते हैं। अतः विद्युतीय अथवा चुम्बकीय बल लगाकर इनके मार्ग को बदला जा सकता है। यह ठीक उसी प्रकार से होता है जैसे प्रकाश के मामले में लेंस की मदद से किया जाता है। यानी इलेक्ट्रॉन-पुंज के मार्ग को विद्युतीय या चुम्बकीय बल क्षेत्र लगाकर ज़रूरत के अनुरूप बदला जा सकता है। साधारण प्रकाश और इलेक्ट्रॉन-पुंज के बीच इस तरह की समानता को

देखते हुए ही इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी का विचार पैदा हुआ था।

ज़ाहिर है कि हम इलेक्ट्रॉन को या उससे सम्बद्ध पदार्थ-तरंग को देख नहीं सकते। मगर हमें सिर्फ अपनी आँखों के भरोसे रहने की ज़रूरत नहीं है। ऐसे उपकरण उपलब्ध हैं जो इलेक्ट्रॉन के आगमन को रिकॉर्ड कर सकते हैं और हमें एक फोटोग्राफ-नुमा पैटर्न दिखा सकते हैं। अर्थात् जब इलेक्ट्रॉन ऐसे उपकरण पर पहुँचेंगे तो ये इस बात को रिकॉर्ड करेंगे और अन्त में पूरे इलेक्ट्रॉन-पुंज का पैटर्न प्रस्तुत कर देंगे।

प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी के मुकाबले इसमें सबसे बड़ा फायदा तो यही है कि हम काफी सूक्ष्म - करीब 0.1 नैनोमीटर के पैमाने पर 'देख' सकते हैं। कुल मिलाकर इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी एक ऐसा उपकरण है जो उच्च-ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉन के एक पुंज से सम्बद्ध पदार्थ-तरंगों का उपयोग करता है और यह देखता है कि किसी पदार्थ में से गुज़रने पर या किसी सतह से टकराकर परावर्तित होने पर इलेक्ट्रॉन-पुंज में किस तरह के परिवर्तन होते हैं और उनका विश्लेषण करके उस पदार्थ की बारीक संरचना का एक प्रतिबिम्ब निर्मित करता है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की मदद से करीब पाँच करोड़ गुना तक आवर्धन सम्भव है। इसका आविष्कार जर्मनी के अन्र्स्ट रुस्का ने 1931 में किया था।

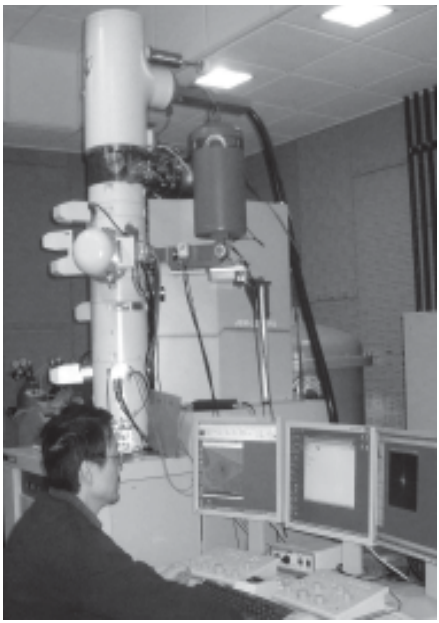

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के गुण

अब ज़रा यह देखें कि इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के अन्दर होता क्या है। मोटे तौर पर पूरी व्यवस्था प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी के समान ही होती है। मगर इसमें प्रतिबिम्ब निर्माण के लिए प्रकाश का उपयोग नहीं होता और चीज़ों को कहीं अधिक बारीकी से देखा जा सकता है।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में एक विशेष फर्क यह होता है कि पूरे उपकरण को निर्वात में रखा जाता है। दूसरा अन्तर यह दिखता है कि प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी के मुकाबले इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी काफी विशाल होता है - इसकी लम्बाई-चौड़ाई लगभग आधा-आधा मीटर होती

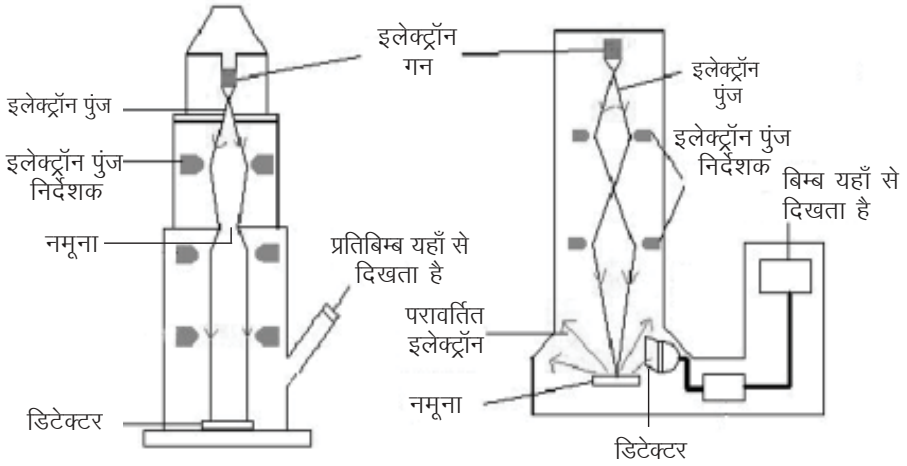

ट्रांसमिशन इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी
(इलेक्ट्रॉन नमूने के आर-पार गुज़रने के बाद प्रतिबिम्ब बनाते हैं)

स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी
(इलेक्ट्रॉन नमूने की सतह से परावर्तित होकर प्रतिबिम्ब बनाते हैं)

है। लिहाज़ा, इसे यहाँ-वहाँ ले जाया नहीं जा सकता।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के प्रमुख घटक हैं - निर्वात तंत्र, इलेक्ट्रॉन गन, इलेक्ट्रॉन-पुंज निर्देशक, नमूने को रखने का साधन और डिटेक्टर।

निर्वात आवरण स्टेनलेस स्टील या एल्यूमिनियम का बना होता है और शेष सारे घटक इसके अन्दर कैद होते हैं। इस निर्वात पात्र में ऐसी व्यवस्था होती है कि इलेक्ट्रॉन-पुंज और अध्ययन किए जा रहे पदार्थ को बाहर से ही हैण्डल किया यानी हिलाया-डुलाया जा सकता है। इस पात्र में वायु का दबाव बाहरी वायुमण्डल से कई अरब गुना कम होता है। इतना कम दबाव हासिल करने के लिए विशेष निर्वात पम्प लगे होते हैं, जो लगातार काम करते रहते हैं। देखा जाए, तो इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी का सबसे बड़ा हिस्सा निर्वात आवरण ही होता है।

दूसरा सबसे बड़ा घटक होता है इलेक्ट्रॉन गन और इससे जुड़ी विद्युतीय इकाई। यह इलेक्ट्रॉन गन यानी बन्दूक उच्च ऊर्जा वाले इलेक्ट्रॉन का एक बारीक पुंज पैदा करती है और उसे फोकस करने व निर्देशित करने का काम करती है। इलेक्ट्रॉन पुंज पैदा करने के लिए एक कैथोड लगा होता है। इस कैथोड को करीब 1000 डिग्री

सेल्सियस पर गर्म किया जाए तो इसमें से भरपूर मात्रा में इलेक्ट्रॉन निकलते हैं। इन इलेक्ट्रॉन को गति देने के लिए कैथोड और एक अन्य इलेक्ट्रोड (एनोड) के बीच ऊँचा वोल्टेज आरोपित किया जाता है। इसका मान 20-50 किलोवोल्ट तक होता है। तुलना के लिए आप देख सकते हैं कि हम टॉर्च वगैरह में जिन सेल्स का उपयोग करते हैं उनका वोल्टेज मात्र 1.5 वोल्ट होता है।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में इलेक्ट्रोड्स का एक सेट और होता है। ये इलेक्ट्रोड छल्लों व सुराखों के रूप में होते हैं। इनमें वोल्टेज को घटा-बढ़ाकर इलेक्ट्रॉन पुंज को सही रास्ते पर भेजने व फोकस करने का काम किया जाता है। ज़्यादा जटिल इलेक्ट्रॉन गन में विद्युत कुण्डलियाँ भी लगी होती हैं। इनकी मदद से चुम्बकीय क्षेत्र पैदा किया जाता है। विद्युत व चुम्बकीय क्षेत्र की मदद से इलेक्ट्रॉन पुंज को ज़्यादा पैना व सघन बनाने में मदद मिलती है। इलेक्ट्रॉन पुंज जितना पैना होगा, प्रतिबिम्ब उतना ही स्पष्ट होगा और उसमें कॉन्ट्रास्ट भी बेहतर होगा। दूसरी ओर, यदि इलेक्ट्रॉन-पुंज की ऊर्जा अधिक है, तो वह आपको बेहतर विभेदन उपलब्ध कराएगा और अध्ययन किए जा रहे पदार्थ में ज़्यादा अन्दर तक पहुँच सकेगा।

20-50 किलो इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा

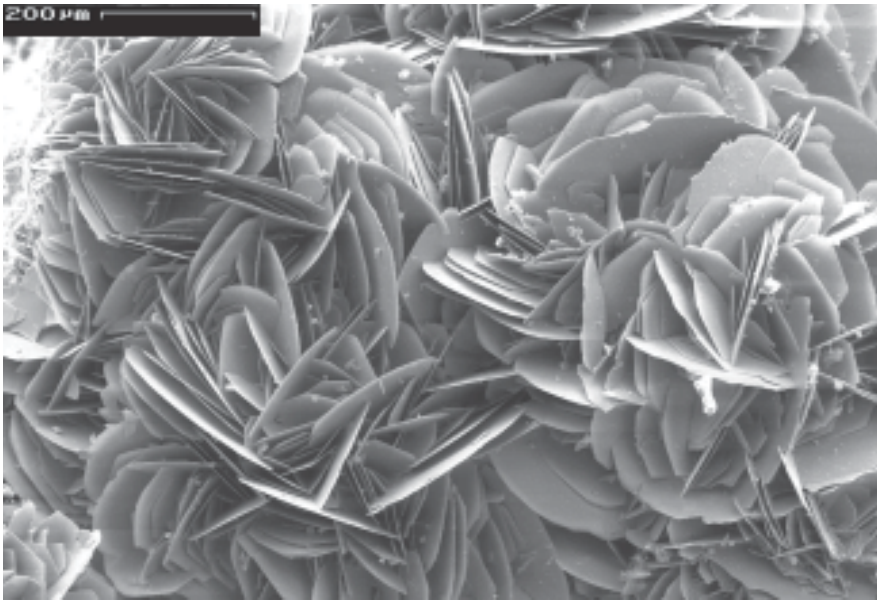

स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से ली गई हैमेटाइट क्रिस्टल की फोटो

वाले इलेक्ट्रॉन-पुंज की तरंग-लम्बाई 0.09 नैनोमीटर से 0.06 नैनोमीटर की रेंज में होती है। तुलना के लिए यह देख सकते हैं कि हाइड्रोजन परमाणु की साइज़ तकरीबन 0.06 नैनोमीटर है। इसका मतलब यह हुआ कि ये इलेक्ट्रॉन-पुंज सिद्धान्ततः तो परमाणु की साइज़ के स्तर पर रचनाओं में विभेद कर सकते हैं।

इलेक्ट्रॉन-पुंज को आप नमूने की सतह से परावर्तन के रूप में भी देख सकते हैं और नमूने के आर-पार गुज़रने के बाद भी देख सकते हैं। जब आप परावर्तित इलेक्ट्रॉन-पुंज का अध्ययन करते हैं तो किसी ठोस वस्तु की सतह की संरचना के गुणधर्मों को देखा जा सकता है। दूसरी ओर पारगमन शैली में आप ठोस वस्तु की सतह के नीचे की संरचना का अध्ययन कर सकते हैं, मगर इसके लिए ज़रूरी होता है कि वस्तु अत्यन्त पतली हो। पारगमन शैली में विभेदन बहुत बढ़िया होता है मगर अक्सर परावर्तन आधारित अध्ययन ज़्यादा उपयोगी होता है क्योंकि इसमें अपेक्षाकृत मोटी वस्तु को लेकर उसकी सतह की संरचना का अध्ययन किया जा सकता है।

इलेक्ट्रॉन-पुंज के लिए डिटेक्टर प्रायः एक काँच की प्लेट होती है जिस पर कोई फ्लोरेसेंट पदार्थ पुता होता है। यह लगभग टेलीविज़न के पर्दे जैसा होता है। जब इस पर्दे पर इलेक्ट्रॉन आकर टकराते हैं तो प्रकाश पैदा होता है और हमें एक दृश्य प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है। आजकल डिटेक्टर के रूप में इलेक्ट्रॉनिक संवेदी चिप्स (सीसीडी) का उपयोग होता है। इसकी मदद से डिजिटल कैमरे के समान प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है।

जिस नमूने का अध्ययन करना हो, उसे एक छोटे-से पात्र में रखा जाता है। नमूना रखने से पहले उस पात्र में निर्वात खत्म किया जाता है। नमूना रखने के बाद पात्र को सील कर दिया जाता है और उसमें फिर से निर्वात पैदा किया जाता है।

अक्सर एक नमूना-पात्र में एक-साथ कई नमूने रख दिए जाते हैं ताकि एक ही बार में उन सबके अवलोकन रिकॉर्ड किए जा सकें। एक शर्त यह होती है कि नमूना (आंशिक रूप से) विद्युत का चालक हो। इसलिए गैर-चालक नमूने को तैयार करने में एक कदम और जुड़ जाता है - इस पर एक महीन चालक परत चढ़ानी होती है। इसके अलावा एक और शर्त यह होती है कि नमूने में पानी जैसा कोई वाष्पशील पदार्थ न हो। एक गौरतलब बात यह है कि चूँकि इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में पूरा काम निर्वात में होता है, इसलिए यह असम्भव है कि इसकी मदद से किसी जीवित कोशिका का अवलोकन हो पाए। लिहाज़ा, इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से सजीवों के जो प्रतिबिम्ब प्राप्त होते हैं वे मृत कोशिकाओं के होते हैं।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी अवलोकन का एक निहायत मूल्यवान उपकरण साबित

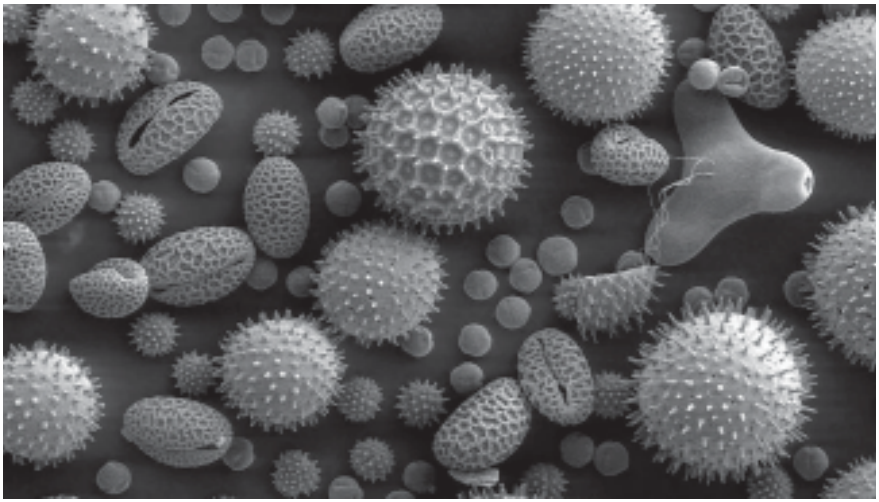

इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप द्वारा लिया गया विविध परागकणों का चित्र।

हुआ है। इसकी मदद से पदार्थ की संरचना का खुलासा अत्यन्त सूक्ष्म स्तर - लगभग परमाणुओं के पैमाने - पर सम्भव हुआ है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शियों से हमें कोशिकाओं, वायरसों, प्रोटीन्स वगैरह की संरचना को बहुत ही बारीकी से समझने में मदद मिली है। इनका उपयोग आणविक जीव विज्ञान अनुसंधान से लेकर उल्काओं के अध्ययन और इंजीनियरिंग सामग्री में संरचनागत नुक्स पहचानने जैसे विविध क्षेत्रों में होता है।

भास बापट: कई साल तक फिज़िकल रिसर्च लेबोरेटरी, अहमदाबाद में शोधकार्य करने के बाद अभी-अभी इन्होंने भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसन्धान संस्थान, पुणे ज्वाइन किया है। परमाणु और आणविक भौतिक विज्ञान में प्रायोगिक शोध करते हैं। शिक्षण और शिक्षा में रुचि रखते हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

यह लेख 'स्रोत फीचर्स' के अंक दिसम्बर, 2013 से लिया गया है।

सवालीराम

सवालीराम: पिछले फुटबॉल वर्ल्ड कप में एक ऑक्टोपस (पॉल बाबा) मैच जीतने वाली टीम की सटीक भविष्यवाणी कैसे करता था?

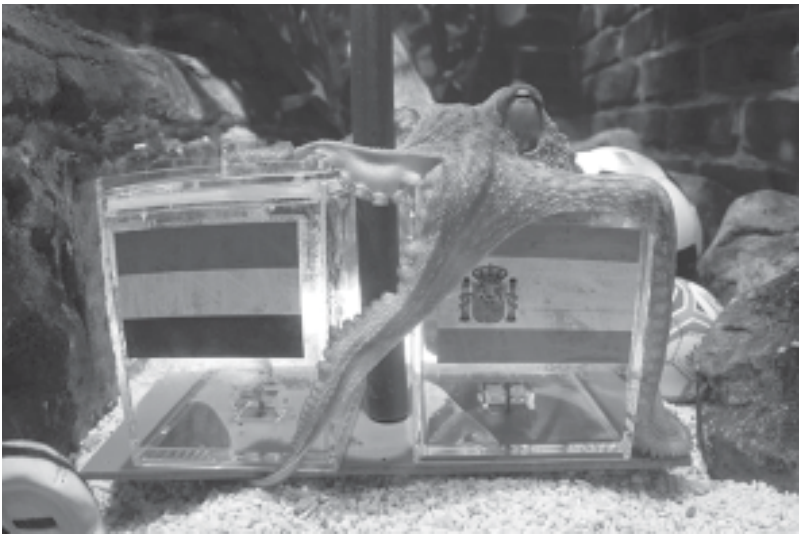

जवाब: जब आपसे यह सवाल पूछा गया था कि पिछले फुटबॉल विश्वकप में जर्मनी के एक ऑक्टोपस - पॉल ने विजेता टीमों की इतनी सटीक भविष्यवाणी कैसे की थी, उन दिनों फुटबॉल की खुमारी चढ़ रही थी। जब आप इस जवाब को पढ़ रहे होंगे तो दुनिया एक नए विश्व चैम्पियन को देख रही होगी।

किसी भी खेल में विजेता टीम के बारे में राय बनाने का एक तरीका है टीमों के बारे में काफी सारी जानकारी इकट्ठी करना। कयास लगाते समय कई बातों का ध्यान रखा जाता है, मसलन - मैच दो बराबरी की टीमों के बीच है या ताकतवर और कमज़ोर टीम के बीच, दोनों टीमों का पिछला रिकॉर्ड, खेल की शैली, खिलाड़ियों का कॉम्बिनेशन, दोनों टीमों के कमज़ोर व मज़बूत पक्ष आदि। खेल विशेषज्ञ हों या सट्टा लगाने वाले, उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर विजेता

टीम के बारे में अपनी राय बनाते हैं। इसे हम सोच-विचार कर, विभिन्न जानकारी का विश्लेषण कर राय बनाना कह सकते हैं।

विजेता टीम के बारे में राय बनाने का एक दूसरा तरीका हो सकता है - अपने दिल की आवाज़ को सुनना। दूसरे शब्दों में कहूँ तो किसी टोटके की मदद से अनुमान लगाना। अनुमान लगाने के विविध तरीके हो सकते हैं जैसे - दोनों टीमों के नाम लिखकर पर्ची डालना और किसी बच्चे से एक पर्ची उठवाना (पर्ची उठाने का काम कोई तोता भी कर सकता है), दोनों टीमों की कुण्डली बनाकर ग्रहों की स्थिति को आधार बनाकर, किन्हीं अंक ज्योतिषीय गणना के आधार पर, या ऊंट, गधा, कुत्ता, कछुआ, ऑक्टोपस आदि से विजेता का चुनाव करवाना।

कई संस्कृतियों में छोटे बच्चे, पक्षी और प्राणी में दैवत्व के करीब होने की मान्यता है। इसलिए माना जाता है कि ये दैववाणी के वाहक हैं।

2010 की विश्वकप फुटबॉल प्रतियोगिता से पहले ही ऑक्टोपस पॉल अपनी सटीक भविष्यवाणी की धाक जमा चुका था। 2008 के यूरोकप में पॉल ने जर्मनी के विविध देशों से होने वाले मैचों की विजेता टीम की काफी सटीक भविष्यवाणी की थी। इसलिए 2010 के विश्वकप के समय जर्मनी के पॉल ऑक्टोपस की भविष्यवाणी को काफी महत्व दिया गया।

ऑक्टोपस पॉल की भविष्यवाणी-दैववाणी को जानने का तरीका एकदम सामान्य था। पॉल को जिस एक्वेरियम में रखा जाता था उसमें उसके खाद्य पदार्थों से भरे दो डिब्बे रखे जाते थे जिन पर मैच खेलने वाले देशों के झण्डे बने होते थे। पॉल जिस डिब्बे के भोज्य पदार्थ को सबसे पहले चुनता था उसे विजेता मान लिया जाता था। 2008 में पॉल ने हर बार जर्मनी को ही चुना। तो वह 6 में से 4 बार सही निकला। इस कारण 2010 के विश्वकप में पॉल पर लोगों की नज़र तो थी लेकिन 4 मैच की सही भविष्यवाणी के बाद ही (जिसमें हर बार जर्मनी विजेता रही) वह विश्वभर प्रख्यात हुआ। इस बार तो सारे 8 मौकों पर पॉल द्वारा चुनी गई टीम ही विजेता रही थी। और इस बार भी पॉल ने जर्मनी को ही ज़्यादातर चुना। लेकिन कुछ एक फर्क थे - जिस एक मैच में जर्मनी हारी, उसमें भी पॉल ने विजेता को सही चुना। और फाइनल में, जिसमें जर्मनी खेल ही नहीं रही थी, वहाँ भी सही विजेता को ही चुना। अगर पॉल से दैववाणी नहीं हो रही थी, तो पॉल की सटीक भविष्यवाणियों को हम कैसे समझ सकते हैं?

तथ्यों का बिलकुल सहारा न लेते हुए भी यदि प्रोबेबिलिटी के सिद्धान्त के हिसाब से देखें और फुटबॉल के खेल में मैच ड्रॉ (बेनतीजा) की सम्भावना को छोड़ दिया जाए तो जीतने वाली

टीम का चांस 1/2 होता है। तो पॉल (या उसके ट्रेनर) के द्वारा किसी चुनी हुई टीम के जीतने की सम्भावना यही है। पॉल के चयन के सही होने की सम्भावना भी यही 1/2 है। तो पॉल के लगातार (8 बार) सही होने की सम्भावना क्या है? 1/2×1/2×1/2× 1/2×1/2×1/2×1/2×1/2, यानी कि 1/256. इसका मतलब है कि संयोग से पॉल की सटीक भविष्यवाणी की सम्भावना दुर्लभ ज़रूर थी परन्तु बहुत ज़्यादा असम्भव भी नहीं। लेकिन दुर्लभ घटनाएँ भी कभी-न-कभी तो घटती ही हैं। और आम तौर पर हमें शायद सिर्फ उन भविष्यवाणियों का पता चलता है जो दुर्लभ व सफल होती हैं - हज़ारों, लाखों गलत भविष्यवाणियाँ तो चर्चा में आती ही नहीं हैं।

और अगर पॉल के मामले में संयोग या सिर्फ चांस की बात नहीं मानते हैं, तो क्या वैकल्पिक सम्भावनाएँ हो सकती हैं? वैज्ञानिकों का एक समूह जो प्राणियों के व्यवहार का अध्ययन करता है, उनके मुताबिक कई जीवों को पर्याप्त रूप से ट्रेनिंग दी जा सकती है। आखिर सर्कस में जीव किस्म-किस्म के करतब करते हैं। ऑक्टोपस भी काफी इंटेलिजेन्ट माने जाते हैं और ऐसे जीवों में शुमार हैं जिन्हें कुछ हद तक ट्रेन किया जा सके। तो हो सकता है कि पॉल ऑक्टोपस को भी ट्रेन करके मैच विजेता टीम को चुना जा रहा था। फिर तो पॉल के ट्रेनर (या उनके सम्पर्क में कोई व्यक्ति टीमों के तथ्यों को लेकर विश्लेषण करते हुए अनुमान लगा रहे थे और) शायद पॉल को किसी गुप्त तरीके से इशारा कर रहे थे।

या यह भी हो सकता है कि पॉल को जर्मनी का झण्डा पसन्द आ गया हो। इस बात की सम्भावना कई लोगों को लगी क्योंकि पॉल ने ज़्यादातर जर्मनी के झण्डे को ही चुना। तो हो सकता है कि पॉल को जर्मनी के झण्डे को चुनने की ट्रेनिंग दी गई थी। वास्तव में, ऑक्टोपस कलर ब्लाइंड होते हैं इसलिए किसी झण्डे का रंग-बिरंगा होना खास मायने नहीं रखता। लेकिन वे गहरे और फीके रंगों में फर्क कर सकते हैं और आकार का भी उनको अन्दाज़ा रहता है। जर्मनी का झण्डा काली, लाल और पीली क्षैतिज धारियों का बना है। मुमकिन है कि पॉल इस पैटर्न को पहचानने लगा। ट्रेनिंग न भी होती तो भी पॉल का इन धारियों को पसन्द करना कुछ अद्‌भुत बात न होती, यदि आम तौर पर ऑक्टोपस को क्षैतिज धारियाँ स्वाभाविक पसन्द होतीं।

यह तो हुआ तर्क पॉल द्वारा जर्मनी चुनने के लिए। लेकिन पॉल ने 2010 में जो एक बार जर्मनी के मैच में दूसरी टीम को सही विजेता चुना, और जो एक बार विजेता टीम को जर्मनी के न खेलते हुए भी सही चुना था, इसके बारे में हम क्या कह सकते हैं? क्या पॉल ने गलती से सही विजेता को चुना? जर्मनी के अलावा विजेता

जर्मनी

घाना

आर्जेंटीना

ऑस्ट्रेलिया

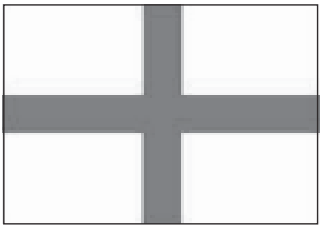

इंग्लैण्ड

नैदरलैंड

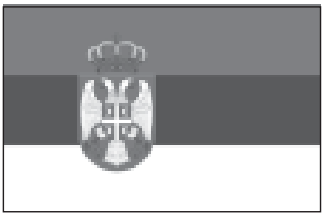

सर्बिया

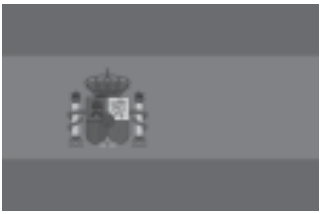

स्पेन

फुटबॉल के फीफा वर्ल्ड कप, 2010 में जर्मनी के जिन देशों के साथ मैच हुए थे उनमें से ज़्यादातर देशों के झण्डे और साथ ही उन देशों के भी जिनको पॉल ने विजेता बताया था।

टीमों के देश के झण्डों को देखा जाए तो उन सब पर गहरी-गाढ़ी क्षैतिज धारियाँ थीं, लेकिन काली और फिर गाढ़ी धारियाँ किसी पर भी नहीं थीं।

एक और बात की सम्भावना है। ऐसा भी हो सकता है कि चांस हो या ट्रेनिंग, पॉल शायद भविष्यवाणी करते समय गलत था। लेकिन, उसके चयन की खबर अगर टीम के खिलाड़ियों तक पहुँच रही होती तो सम्भव है कि उससे प्रभावित होकर मैच में उन्होंने ऐसे खेला कि परिणाम वही हुआ जो पॉल ने बतलाया था। घटनाओं से पहले दिए गए सुझाव या अन्य बातों का नतीजों पर असर, यह कोई नई बात नहीं है - शोध से पता चलता है कि कुछ परिस्थितियों में तो ऐसा होता है। शायद जर्मनी की टीम के खिलाड़ियों को पॉल की भविष्यवाणियों पर इतना विश्वास था कि जब पॉल ने उनकी हार की भविष्यवाणी की, वो इतने चिन्तित हो गए कि तनाव के कारण वे हारे। ऐसी भविष्यवाणियों को 'सेल्फ फुल फिल्लिंग प्रोफैसीस' कहते हैं।

पॉल की इतनी सटीकता खेल प्रेमियों, सट्टा व्यवसायियों और वैज्ञानिकों, सबके लिए हैरत और कौतूहल का विषय बन गई थी।

पॉल ऑक्टोपस अक्टूबर, 2010 में ही चल बसा। उसकी मौत के साथ आगे पॉल के साथ इस बात की जाँच करने की सम्भावना भी खत्म हो गई कि आखिर इस किस्से में इन सबमें से कौन-से कारण ज़्यादा महत्वपूर्ण थे।

इस जवाब को माधव केलकर और विनता विश्वनाथन ने तैयार किया है।

माधव केलकर: 'संदर्भ' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।
विनता विश्वनाथन: 'संदर्भ' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

इस बार का सवाल

सवाल: पुड़ी क्यों फूलती है?

इस सवाल के बारे में आप क्या सोचते हैं, आपका क्या अनुमान है, क्या होता होगा? इस सवाल को लेकर आप जो कुछ भी सोचते हैं, सही-गलत की परवाह किए बिना हमारे पास लिखकर भेज दीजिए।

एकलव्य का नया प्रकाशन

www.eklavya.in

पढ़ें अकाल की कहानी - अकाल पीड़ितों की ज़ुबानी

रूखी-सुखी

पश्चिमी निमाड़ में अकाल

आधारशिला शिक्षण केन्द्र की प्रस्तुति

पेपर बैक 24

मूल्य: 45.00

ISBN: 978-93-81300-76-3

रूखी-सुखी

अकाल पड़ा।
सारी फसल मर गई।
नदी-नाले सूख गए।
पेड़ भी मरे।
पशु और पक्षी भी।

अकाल में क्या
खाकर जिए?
पानी कहाँ से पीते थे?

बहुत से लोग मर
गए।
लूटपाट मची।

Order your copies at: pitara@eklavya.in

किसे कहते हैं विज्ञान?

रॉबिन डनबार

हमारे पास ज्ञान तक पहुँचने का एकमात्र साधन प्रयोग और परीक्षण है। बाकी सब काव्य है, कल्पना है।

- मैक्स प्लाँक

वैज्ञानिक यह प्रश्न पूछने के लिए शायद ही कभी रुकते हों कि क्या है जो उनके काम को परिभाषित करता है। वे व्यावहारिक होते हैं, इसलिए वे कुछ करते रहने में विश्वास रखते हैं। दूसरी ओर दार्शनिकों ने बहुत-सा समय इस बात पर विचार करने में लगाया है कि विज्ञान को कैसे परिभाषित किया जाए, और (यदि हम ऐसा कर पाएँ तो) हम धर्म से उस के अन्तर को कैसे समझें। दोनों ही समूहों के लोगों का सरोकार अन्ततः एक ही केन्द्रीय मुद्दे से रहा है, यानी संसार से सम्बन्धित हमारे ज्ञान की निश्चितता का मसला। लेकिन दोनों के परिप्रेक्ष्य बहुत ही अलग रहे हैं। वैज्ञानिकों की चिन्ता आम तौर पर संसार के बारे में उनके द्वारा निकाले गए खास निष्कर्षों की मान्यता को लेकर रही है; दार्शनिक अमूमन इस बात के बारे में ज़्यादा चिन्तित रहे हैं कि सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया की प्रकृति क्या है। अपनी जाँच को प्रारम्भ करने का सही प्रस्थान बिन्दु दार्शनिक है।

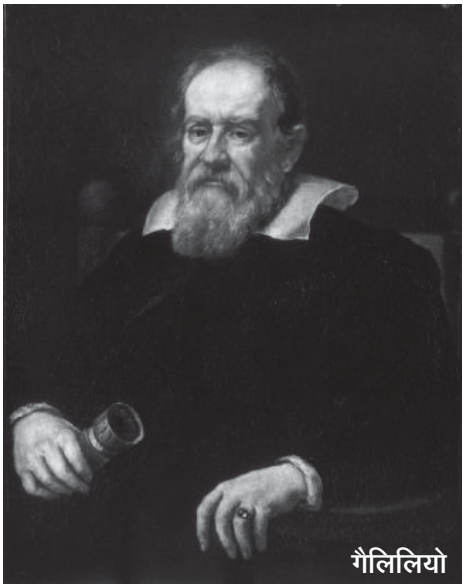

गैलिलियो

विज्ञान की कला

यदि हम आधुनिक विज्ञान का प्रारम्भ 1632 में गैलिलियो से मानते हैं तो विज्ञान के दर्शन की शुरुआत अँग्रेज़ दार्शनिक और साहित्यकार फ्रांसिस बेकन से मानी जा सकती है। बेकन ने 1606 से लेकर 1626 में अपनी मृत्यु तक पुस्तकों की

एक शृंखला में अनुभवसिद्ध विज्ञान (*एम्पिरिकल साइंस*) का पक्ष लिया। बेकन की नज़र में धर्मशास्त्र के मध्ययुगीन दार्शनिकों की बातें तुच्छ, घिसी-पिटी, तथा वक्त बरबाद करने वाली थीं, और उन्होंने उन्हें जम कर लताड़ा। मध्ययुगीन विद्वानों के विरुद्ध बेकन के हमले के केन्द्र में ज्ञान की निश्चितता का मसला था - हम कैसे पक्के तौर पर कह सकते हैं कि हमारा ज्ञान पूर्ण रूप से विश्वसनीय है? सुकरात और उनके बाद के यूनानी दार्शनिकों द्वारा स्थापित परम्परा ने कार्य-कारण सम्बन्ध के आधार पर तर्कसंगत निष्कर्ष को प्रधानता दी थी। बेकन का मानना था कि लगभग छः सदियों तक मध्यकालीन दर्शन को सताने वाले सब अनसुलझे (और कभी न सुलझ पाने वाले) झगड़ों का मूल कारण यही था।

फ्रांसिस बेकन

बेकन के विचार में अनुभव आधारित प्रेक्षण यानी अवलोकन तथा विधिवत, व्यवस्थित प्रयोग के माध्यम से ही किसी परिकल्पना (हाइपॉथिसिस) को उपयुक्त ढंग से परखा जा सकता है - उनकी नज़र में परख का यही एकमात्र तरीका था। विज्ञान के विकास में बेकन का योगदान यही है कि उन्होंने इस बात के महत्व को चिन्हित किया। उनके द्वारा दिए गए तर्क आने वाली दो सदियों में पेशेवर वैज्ञानिकों के लिए बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुए। लेकिन अपनी इस नई पद्धति की खूबियों को प्रशंसित करते हुए बेकन ने अपने से पहले के दार्शनिकों के साथ न्याय करने में बहुत कम उदारता दिखाई। यह तो सही है कि मध्यकालीन युग में बाल की खाल उतारने की प्रवृत्ति थी और इसलिए बेकन के आक्रोश को उचित ठहराया जा सकता है। लेकिन कई अपवाद भी थे और बेकन उनके

ऋणी भी थे। इनमें निकलस ओरेस्मे, ग्रोसटेस्ट, डन्स स्कोट्स, विलियम ऑफ ऑकम तथा रॉजर बेकन मुख्य तौर से महत्वपूर्ण थे। इन सब ने भी इस बात के महत्व पर बल दिया था कि दलीलों को तर्क की कसौटी पर बहुत ही सख्ती के साथ कसा जाना चाहिए। वे भी उन सिद्धान्तों का गुणगान करते थे जिनके लिए न्यूनतम अप्रमाणित मान्यताओं की आवश्यकता हो (एक महत्वपूर्ण धारणा जिसे आज तक *ऑकम का उस्तरा* के नाम से जाना जाता है)। और वे परिकल्पनाओं की अनुभव आधारित जाँच के हिमायती भी थे। तेरहवीं सदी में ही ग्रोसटेस्ट विशेष तथ्यों के आधार पर सामान्य परिणाम निकालने से सम्बन्धित समस्याओं पर, तथा ज्ञान की वैधता पर गहन विचार कर रहे थे। लेकिन अपने वक्त के ये महामानव भी मध्ययुग के अरब कीमियागरों (लोहे को सोने में बदलने की सम्भावना में विश्वास रखने वालों) और दर्शनशास्त्रियों के सामने फीके पड़ गए - अल हशम, मुहम्मद इब्न मूसा अल ख्वारिज़्मी और कमाल-अल-दीन-अल-फारिसी जैसे लोगों ने नौवीं और पन्द्रहवीं सदी के बीच के समयकाल में परीक्षण की कला को नई ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया था।

बेकन द्वारा अरस्तू की घोर निन्दा और बेकद्री तो और भी अधिक अनुचित थी। यह तो पक्की बात है कि अरस्तू की कृतियों को मध्ययुगीन विद्वानों के हाथों काफी नुकसान उठाना पड़ा था। विश्लेषण करने सम्बन्धी उनकी ज़बरदस्त शक्तियों और उन के ज्ञान के अद्भुत विस्तार को देखते हुए इन विद्वानों ने अरस्तू को अचूक मान लिया था। दुर्भाग्य यह था कि अरस्तू को स्वयं उनकी कृतियों की बजाय मध्ययुगीन विद्वानों के स्वार्थसिद्धी पर आधारित संकलनों के माध्यम से अधिक जाना गया। बेकन की भर्त्सना का शिकार वह महान बहुविद् कम और तथाकथित मध्ययुगीन अरस्तूवादी अधिक थे। क्योंकि, चौथी सदी ईसा पूर्व में जो कुछ अरस्तू ने हासिल किया, वह सच में उल्लेखनीय और कमाल की बात थी।

अरस्तू अनुभवसिद्ध सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाले यूनानी दार्शनिकों में से सर्वप्रथम तो नहीं थे लेकिन अपने समकालीनों में इसलिए अलग खड़े दिखाई देते थे कि वे बहुत ही सावधानी से और सटीक ढंग से कार्य करते थे। वे बहुत बार यह शिकायत करते थे कि उनके पूर्ववर्तियों का कार्य लापरवाह प्रेक्षण (ऑब्ज़र्वेशन) का शिकार था। बुनियादी तौर पर एक और सन्दर्भ में वे उन सबसे अलग थे - वे परिकल्पनाओं को जाँचने के लिए अनुभव आधारित प्रेक्षण के इस्तेमाल के महत्व पर ज़ोर देते थे। उनसे पहले के दार्शनिक तो प्रेक्षण को केवल अनुमान लगाने हेतु एक प्रस्थान-बिन्दु के तौर पर प्रयोग में लाने की ओर प्रवृत्त थे, लेकिन अरस्तू अपने सिद्धान्तों की जाँच-परख प्रकृति की कसौटी पर

करने को तैयार रहते थे। वे इस बात पर बल देते थे कि अवलोकन और प्रेक्षण से हासिल किए गए तथ्यों का महत्व सिद्धान्तों के मुकाबले अधिक है। एक और तत्व है जो उपरोक्त दो विशेषताओं के साथ मिलकर एक बहुत ही मज़बूत कार्यप्रणाली प्रदान करता है - कड़ाई के साथ, तार्किक आधार पर कारण-कार्य सम्बन्धों का प्रयोग करते हुए ऐसी कारणात्मक परिकल्पनाओं का विकास जिन्हें अनुभव आधारित प्रमाणों की मदद से जाँचा जा सके।

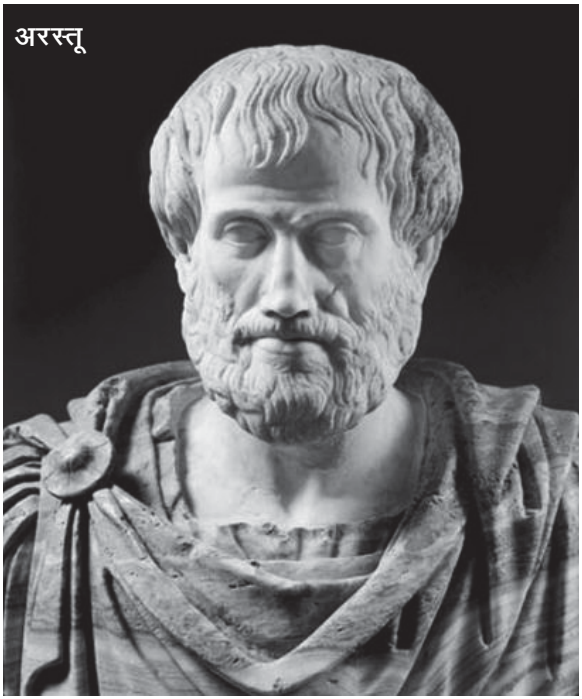
अरस्तू

अरस्तू और बेकन, दोनों के दृष्टिकोणों के केन्द्र में परिकल्पनाओं को जाँचने-परखने पर बल देने की बात है। लेकिन बेकन के बाद की सदियों में *वैज्ञानिक प्रणाली* का अर्थ *प्रायोगिक प्रणाली* हो गया, और इस का एक मुख्य कारण था विकसित हो रहे प्रयोग-आधारित विज्ञानों का बेकन द्वारा पुरज़ोर समर्थन। दुर्भाग्य से, ऐसा करने का अर्थ है सामान्य को विशेष से गड्ड-मड्ड करना। प्रयोग परिकल्पनाओं को जाँचने-परखने का एक विशेष तरीका है, लेकिन यह भी नहीं है कि ऐसा करने का यही एकमात्र तरीका हो। परिकल्पनाओं को प्रेक्षण के आधार पर भी जाँचा जा सकता है (जैसा अरस्तू ने किया) तथा उन्हें उनकी आन्तरिक तार्किक संगति एवं सामंजस्य के मूल्यांकन के आधार पर भी परखा जा सकता है (जैसा यूक्लिड से पाइथॉगरस तक के महान यूनानी ज्यामितिज्ञों ने किया था)। फिर भी, प्रायोगिक तथा अवलोकन आधारित परखों में अन्तर होता है, जिसे बेकन बहुत अच्छे से पहचानते थे, और यह अन्तर इस बात का है कि प्रेक्षण आधारित तथ्य-समूहों में कई तरह के अनियंत्रित परिवर्तनशील कारकों का खतरा रहता है। प्रयोगों में यह

महत्वपूर्ण, निर्णायक फायदा रहता है कि वैज्ञानिक अधिकतर परिवर्तनशील कारकों को नियंत्रित कर सकता है - उस परिवर्तनशील कारक को छोड़ते हुए जिसमें उसकी विशेष दिलचस्पी है।

संसार में लगभग सब-कुछ कई तरह के कारकों से प्रभावित होता है, और इसके चलते चकरा देने वाले परिवर्तनशील कारक एक वैज्ञानिक के लिए अहितकारी सिद्ध होते हैं। आइए एक सामान्य-सी समस्या को देखें - फसलों का विकास किस बात से निर्धारित होता है? सम्भावित कारकों की एक बहुत ही लम्बी सूची बन सकती है - वर्षा की मात्रा, तापमान, हवा, मिट्टी की किस्म, ज़मीन की ढलान और रूप-आकार, बुआई का महीना, बुआई के समय का राशिचिन्ह, वसन्त ऋतु के समय प्रवास करने वाले परिन्दों की संख्या, देवताओं को चढ़ाई गई बलियों की संख्या, संसार के प्रारम्भ से अब तक गुज़र चुके दिनों की संख्या - और ये तो कुछ ऐसी सम्भावनाएँ हैं जो स्वाभाविक तौर पर पहली ही नज़र में दिखाई देती हैं। इनमें से कोई भी संकेत स्वयं में आन्तरिक तौर पर गलत नहीं है - ये सभी अच्छी-खासी वैज्ञानिक पूर्व-धारणाएँ हैं। हमारी समस्या यह फैसला करने की है कि कौन-से कारक सच में पौधे के विकास को प्रभावित करते हैं और कौन-से कारक ऐसे आकस्मिक परस्पर सम्बन्धों के दायरे में आते हैं जिनका पौधे के विकास से कोई सम्बन्ध न हो।

अब तो हम यह जानते हैं कि पहले पाँच कारक सच में पौधे के विकास को प्रभावित करते हैं। छठा, सातवाँ और आठवाँ पौधे के विकास से असम्बद्ध है लेकिन उनका सम्बन्ध ऐसे परिवर्तनशील कारकों से है जो उस विकास को प्रभावित करते हैं, और अन्तिम दो तो लगभग निश्चित तौर पर अप्रासंगिक हैं। लेकिन असल बात तो यह है कि हमें पहले से इस बात का ज्ञान नहीं होगा। यदि हम फसलों के प्रदर्शन के आधार पर केवल एक पूर्व-धारणा को भी जाँचें, तो सम्भव है कि इन सभी परिकल्पनाओं के लिए भविष्यवाणी और यथार्थ के बीच का अच्छा मेल हो जाए। मसलन, बुआई के समय के राशिचिन्ह को फसलों की बुआई करने के लिए मार्गदर्शक के तौर पर प्रयोग में लाए जाने से शायद ईस्वी पूर्व की अन्तिम सदियों के मध्य यूनान में साल-दर-साल बहुत तसल्ली-बख्श नतीजे मिले हों।

यह इसलिए कि हालाँकि पौधों के विकास पर स्वयं ग्रहों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, आकाश में उन की हरकत का नज़दीकी सम्बन्ध पौधों के विकास को प्रभावित करने वाले कुछ कारकों (उल्लेखनीय तौर पर वर्षा और तापमान का मौसमी ताना-बाना) से तो बन ही जाता है। लेकिन इस नियम को उस समय के दक्षिण अफ्रीका में लागू करना घातक सिद्ध होता। इसके अलावा,

इससे आज भी हमें कोई मदद नहीं मिलेगी - मध्य यूनान में भी नहीं - क्योंकि धरती के धुरी-चक्र के अग्रगमन (अपने अक्ष पर घूमते हुए, धरती की डगमगाहट के चलते ध्रुवीय सितारों और धरती के बीच की पंक्तिबद्धता की दिशा में होने वाला क्रमिक बदलाव) का अर्थ है कि राशिचिन्हों का समय-निर्धारण अरस्तू के काल से अब तक एक पूरा चक्र घूम चुका है: यह क्रमबद्धता अब राशिचक्र की 12वीं राशि मीन से प्रारम्भ होती है न कि पहली राशि मेष से, जैसा 2500 साल पहले हुआ करता था।

एक और विशेष उदाहरण लीजिए। इज़राइल के तेल अवीव विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ताओं ने हाल ही में बताया है कि पतली मूँछों वाले लोगों में अल्सर यानी फोड़ा होने की अधिक सम्भावना रहती है। यह खबर मुझे तुरन्त अपनी मूँछें सफाचट करने को प्रेरित कर सकती है ताकि मैं फोड़े होने की सम्भावना को कम कर सकूँ। लेकिन ऐसा करना व्यर्थ ही होगा - बल्कि यह भी हो सकता है कि इसका विपरीत ही प्रभाव हो और अल्सर होने की सम्भावनाओं को बढ़ा दे। कारण यह है कि मूछें स्वयं में अल्सर के विकास को प्रभावित नहीं करतीं। बल्कि मेरा व्यक्तित्व है जो दाढ़ी बनाने की मेरी आदतों तथा अल्सर का शिकार होने की मेरी सम्भावना, दोनों को प्रभावित करता है। बहुत ही सफाई से बनाई गई कतरनी मूँछें तो कुछ और नहीं बल्कि मेरे सामान्य हाव-भाव और व्यवहार से उनके सह-सम्बन्ध का नतीजा हैं। अधिक सम्भावना है कि तेज़-मिज़ाज, चिड़चिड़े और घबराए हुए लोग कतरनी मूँछें तो रखेंगे ही, उन्हें अल्सर होने की भी अधिक गुंजाइश होगी। अपनी मूँछ को बेतरतीब बढ़ने देना या फिर उसे पूरी तरह ही सफाचट कर देना शायद वास्तव में मुझे अधिक असहज और चिड़चिड़ा बना दे, और मुझे अल्सर होने की सम्भावना भी अधिक हो जाए। परस्पर सम्बन्धों से कारणों का संकेत नहीं मिलता। रोज़मर्रा की ही तरह विज्ञान की केन्द्रीय समस्या यह है कि एक ओर असल कारणात्मक प्रभावों और दूसरी ओर चकरा देने वाले परिवर्तनशील कारकों की वजह से उत्पन्न जाली प्रभावों में अन्तर कैसे किया जाए?

बेकन के समयकाल में यथार्थ के संसार की प्राकृतिक घटनाओं में सम्बन्धों की जटिलता को खोलने की कोशिश असम्भव ही थी जब तक इसके लिए ऐसे प्रयोगों की मदद न ली जाए जिन में बाकी सभी कारकों को स्थिर रखते हुए एक ही कारक में हेर-फेर की इजाज़त हो। बेकन और उनके उत्तराधिकारियों के लिए अवलोकन से उभरे तथ्य-समूह तो बस सिद्धान्त-निर्माण के लिए प्रस्थान-बिन्दु मात्र थे। अवलोकन पर आधारित परिकल्पना से लैस वैज्ञानिक का कार्य था कि वह कड़ाई से लागू की गई प्रायोगिक जाँचों की एक लड़ी के आधार पर सभी

नकली सह-सम्बन्धों को खारिज कर पाए। लेकिन पिछली लगभग एक सदी में गणितीय साँख्यिकी के विकास ने हमें ऐसी प्रबल तकनीकें मुहैया करवाई हैं जिन की मदद से हम शुद्ध रूप से अवलोकन-आधारित तथ्य-समूहों पर समतुल्य परीक्षण कर सकते हैं। खास तौर से वर्तमान सदी के उत्तरार्ध में साँख्यिकीय विश्लेषण (जो विभिन्न कारकों के प्रभाव को अलग करने के लिए गणितीय तकनीकों का प्रयोग करता है) ने गैर-प्रायोगिक अनुभव-आधारित अध्ययनों की सँख्या में नाटकीय वृद्धि को सम्भव बनाया है।

इस बदलाव के महत्वपूर्ण नतीजे निकले हैं। यह विज्ञान के कुछ क्षेत्रों में खास देखने को मिला है, जैसे व्यवहारवादी जीवविज्ञान, जिस में प्रायोगिक जोड़-तोड़ के कारण उन्हीं प्राकृतिक घटनाओं की बरबादी भी हो सकती है जिनका अध्ययन किया जाना है। मसलन, कुछ ही अरसे पहले तक यह आम बात थी कि बन्दरों और गोरिल्ला के बीच के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन जानवरों के ऐसे समूहों को इकट्ठा करके किया जाता था जो एक-दूसरे के लिए अनजान हों। लेकिन कई प्राइमेट/नरवानर समूहों की संरचना बहुत ही जटिल होती है क्योंकि यह एक जानवर के दूसरे जानवरों के साथ ऐसे निश्चित सम्बन्धों पर आधारित होती है जो बहुत ही लम्बे अरसे से बनते चले आए हैं, कभी-कभी तो कई पीढ़ियों पहले से। इसमें कई महत्वपूर्ण सहायक कारक रहते हैं, जैसे रिश्तेदारी, लम्बे दौर से चली आ रही जान-पहचान और बारम्बार परस्पर मेल-जोल पर आधारित दोस्तियाँ, यहाँ तक कि किन्हीं अन्य सदस्यों के बीच सम्बन्ध होने की जानकारी।

इस प्रकार, हालाँकि अनजानों में से समूहों को संयोजित करने की प्रक्रिया हमें इस बारे में बहुत कुछ बता सकती है कि वानर किस प्रकार नए सम्बन्ध स्थापित करते हैं, समय (या इतिहास) की गहराई के न होने का अर्थ यह है कि प्राइमेट समूहों को निर्मित करने वाले कुछ मुख्य अंश इन प्रायोगिक स्थितियों में गायब हैं। यदि वे प्रक्रियाएँ उन तौर-तरीकों के लिए महत्वपूर्ण हैं जिन के तहत जानवर अपने सम्बन्ध बनाते हैं, तो इनकी अनुपस्थिति की वजह से इस बात में नाटकीय तबदीली आ सकती है कि जानवर किस प्रकार के सम्बन्ध विकसित करते हैं। और इससे समूह की प्रत्यक्ष संरचना भी प्रभावित होगी। मसलन, मुझे गेलाडा बबून (अफ्रीका में पाया जाने वाला बड़ा बन्दर) पर किए गए अध्ययन से ज्ञात हुआ कि जब एक-दूसरे से रिश्ता न होने की वजह से समूहों के सगोत्रता पर आधारित व्यवस्थित सम्बन्ध न हों तो बन्दर किन्हीं शक्तिशाली उच्च-प्रतिष्ठितों के साथ सम्बन्ध बनाना पसन्द करते हैं, जबकि अच्छे से विकसित, सम्बन्ध-आधारित व्यवस्थित समूहों में वे नज़दीकी सम्बन्धियों से जुड़ना पसन्द करते हैं (इस बात को

भी दरकिनार करते हुए कि समूह में उन का स्थान क्या है)।

तो विज्ञान एक प्रणाली है विश्व के बारे में जानकारी हासिल करने की - वह कोई विशेष सिद्धान्त का कलेवर नहीं है। विज्ञान को चाहे जैसे भी प्रयोग में लाया जाए, उसका मुख्य उद्देश्य कारणों को स्थापित करने का है। अमेरिकी दार्शनिक जॉर्ज गेल की शब्दावली में कहें तो इस समझ और अहसास ने कुछ दार्शनिकों को *कुकबुक विज्ञान* और *कारण स्थापित करने वाले विज्ञान* के बीच फर्क करने की ओर प्रवृत्त किया है। यह अन्तर इस बात को पहचानता है कि विज्ञान के अन्तर्गत दो स्पष्ट, अलग-अलग कदम आते हैं, यानी अनुभव आधारित प्रेक्षणों का संचय (जिसे सामान्य नियमों के पुलिन्दे का रूप मिल जाता है), और ऐसे कारणों की खोज जो हमें बताएँ-समझाएँ कि ये सामान्य नियम क्यों अस्तित्व में हैं।

यह हमें *जानना कैसे* और *जानना कि* के बीच के उस अन्तर की याद दिलाता है जिसकी ओर जाने-माने दार्शनिक गिल्बर्ट राइल ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक *द कॉन्सेप्ट ऑफ माइंड* में हमारा ध्यान आकर्षित किया था। राइल के मुताबिक *मुझे मालूम है* ***क*** *को कैसे किया जाना है* और *मुझे मालूम है कि* ***क*** *है क्योंकि...* कह पाने में अन्तर है। पहली बात तकनीकी दक्षता की ओर इशारा करती है। लेकिन यह अर्थ दूसरी बात से ही निकलता है कि बोलने वाले को मालूम है कि ***क*** क्यों उसी ढंग से कार्य करता है जो हमारे सामने है। मैं राइल की बात को थोड़ा दूसरे तरीके से कहना चाहूँगा,

गिल्बर्ट राइल

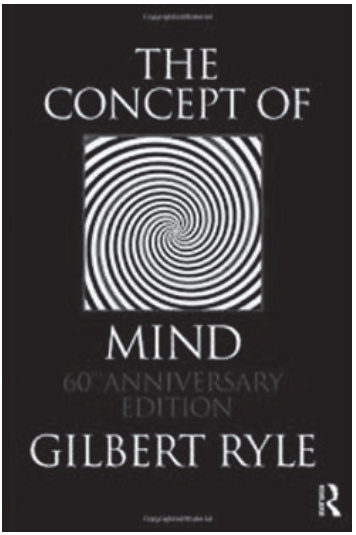

रोज़मर्रा के जीवन से कोई उदाहरण सोचिए जहाँ चकरा देने वाले परिवर्तनशील कारकों की वजह से कार्य-कारण सम्बन्ध देख पाने में दिक्कत पैदा होती है। बेकन विज्ञान में प्रयोगों की भूमिका पर ज़ोर क्यों देते हैं?

इस खण्ड में दो तरह के ज्ञान के उदाहरण दिए हैं - जानना कि कैसे और जानना कि क्यों। दोनों की विज्ञान की प्रगति में भूमिका है हालाँकि, वह समान नहीं है। ज्ञान के इन दोनों प्रकारों में प्रयोगों की क्या भूमिका होगी?

'जानना कि क्यों' किस हद तक अप्रेक्षणीय इकाइयों के सन्दर्भ में यथार्थवादी होगा?

यानी *जानना कि* (***क*** है) और *जानना क्यों* (***क*** है), अलबत्ता बात तो वही है।

यदि हम अपने उस उदाहरण पर वापिस जाएँ कि पौधे किस कारण से बढ़ते हैं तो इस अन्तर का महत्व स्पष्ट हो जाएगा। राशिचिन्हों का प्रयोग या वसन्त ऋतु में परिन्दों के प्रवास का आगमन यह तय करने का बहुत ही प्रभावशाली नियम हो सकता है कि फसलें कब बोई जाएँ। यह कुकबुक विज्ञान हैः कुछ नियम जो हमें बताएँ कि क्या होगा, जो आम तौर पर ऐसी भाषा में लिपटे होते हैं कि *यदि...तो...* (*यदि तुम फसल परिन्दों के आगमन पर बोते हो, तो तुम्हें गर्मियों में बहुत फसल मिलेगी*)। लेकिन ये नियम कामचलाऊ ही हैंः ये अन्तःसम्बन्ध हैं जो प्राकृतिक संसार में कई सालों के अनुभव को सामान्य नियमों का रूप दे दिए जाने पर आधारित हैं। ऐसे कामचलाऊ नियम रोज़मर्रा के उद्देश्यों के लिए पूर्ण रूप से पर्याप्त हैं।

मिस्र देश के लोग आखिर खगोलिकीय कैलेण्डर के आधार पर ही तो नील नदी में आने वाली सालाना बाढ़ की भविष्यवाणी किया करते थे - और वह इतनी सटीक होती थी कि हम भी शायद ही आज उसे मात दे सकें। मिस्र के बाशिन्दों के लिए यह सटीकता बहुत ही आवश्यक थी क्योंकि बाढ़ का समयकाल इतना कम होता था कि उससे प्राप्त हो पाने वाले लाभों को हासिल करने के लिए आवश्यक मज़दूरों की सेना को खड़ा कर पाना मुमकिन नहीं हो पाता था। मज़दूरों की इस बिखरी हुई तितर-बितर फौज को बुलावा देने के लिए कोई तरीका ज़रूरी था जिसकी मदद से बाढ़ के आगमन के बारे में काफी पहले पता लग सके।

लेकिन न तो मिस्र के और न ही यूनान के किसान को इस बात की कोई समझ थी कि क्यों इन घटनाओं के सम्बन्ध को एक-दूसरे के साथ जोड़ कर देखना चाहिए (हालाँकि शायद उनके भी अपने कोई सिद्धान्त तो रहे ही होंगे)। यदि हमारा किसान पूर्वी

अफ्रीका की ओर प्रवास कर जाए तो घोर संकट पैदा हो जाएगा क्योंकि उष्णकटिबन्धों यानी ट्रॉपिक्स में मौसमों का सिलसिला और क्रम वैसा ही नहीं होता जैसा कि पूर्वी भूमध्यसागर क्षेत्र में। इससे भी आगे, पक्षी इस क्षेत्र में से होकर उसी प्रकार प्रवास नहीं करते जैसा यूनान में करते हैं। तो, किसान गलत समय पर बुआई करेगा और बरबाद होगा। नई दुनिया के उत्तरी क्षेत्रों में पहुँचने वाले सर्वप्रथम यूरोपीय प्रवासियों की बिलकुल यही कहानी थी। कैप्टेन स्मिथ के नेतृत्व में सत्रहवीं सदी में वर्जीनिया तट पर बसाहट के लिए आने वाले लोगों को शुरुआती सालों की सर्दियों में भयानक हालात का सामना करना पड़ा था, इसलिए कि उन्होंने उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के पर्यावरण में प्रचलित, बिलकुल ही अलग तरह की कृषि की रीतियों को लागू करने की कोशिश की। यदि उन्हें वहीं के मूल निवासी इंडियन लोगों की मदद न मिली होती (जिन्होंने उन्हें स्थानीय पर्यावरण के अनुकूल कृषि करना सिखाया), और यदि प्रत्येक गरमी के मौसम में प्रवासियों की मातृभूमि से रसद के जहाज़ और नए प्रवासी न आते रहते तो यह औपनिवेशिक चेष्टा प्रारम्भ के ही कुछ सालों में असफल हो गई होती।

भविष्य के बारे में पक्के तौर पर कुछ भी तभी कहा जा सकता है यदि प्रकृति में घटित होने वाली प्रक्रियाओं को संचालित करने वाली व्यवस्थाओं के बारे में हमारी समझ पुख्ता हो। और इस प्रकार, आगे होने वाले घटनाचक्र की भविष्यवाणी कर पाने की योग्यता, जो होता है उसे नियंत्रित कर पाने की क्षमता (ज़रूरत पड़ने पर प्रयोगों के ज़रिए) विज्ञान की कसौटी बन गए हैं। सार यह है कि कारण खोजना विज्ञान का उद्देश्य है, और अनुभव आधारित तथ्य-समूहों (डेटा) के प्रयोग के बल पर परिकल्पना की जाँच विज्ञान की केन्द्रीय पद्धति है।

(...जारी)

रॉबिन डनबार: यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड में सोशल एंड एवोल्यूशनरी न्यूरोसाइंस रिसर्च ग्रुप, एक्सपेरीमेंटल सायकोलॉजी विभाग के विभागाध्यक्ष हैं और एवोल्यूशनरी साइकोलॉजी के प्राध्यापक हैं। बहुत-सी शैक्षिक पुस्तकें लिखी हैं और दो साल विज्ञान लेखन भी किया है।
अँग्रेज़ी से अनुवाद: रमणीक मोहन।

यह लेख रॉबिन डनबार की किताब *दी ट्रबल विद साइंस*, फेबर एंड फेबर प्रकाशित, 1995, से लिया गया है।

आप इस लेख को एकलव्य द्वारा विज्ञान शिक्षण पर तैयार की जा रही पुस्तक के अन्तर्गत भी पढ़ सकेंगे।

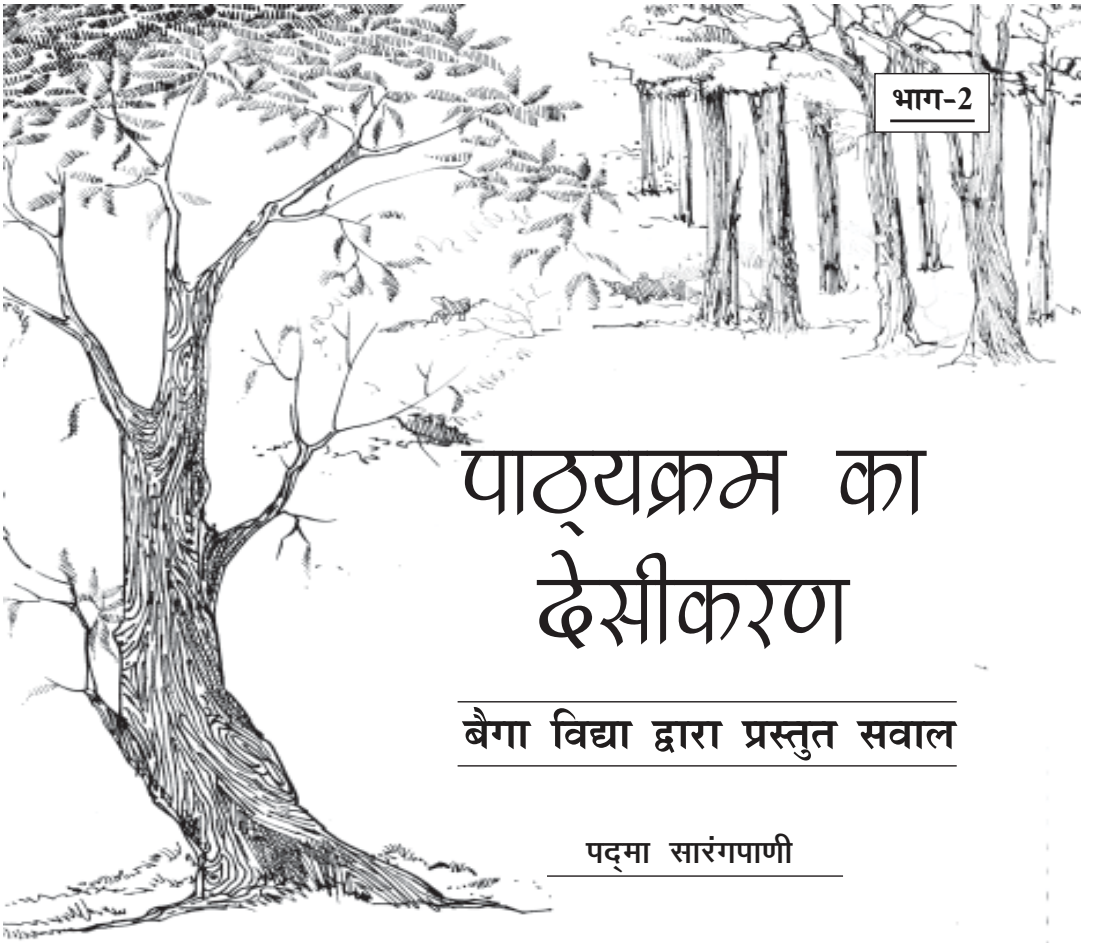

भाग-2

पाठ्यक्रम का देसीकरण

बैगा विद्या द्वारा प्रस्तुत सवाल

पद्मा सारंगपाणी

बैगा एक जनजाति है जो मध्य भारत में निवास करती है। ये लोग जंगलों व चिकित्सा के बारे में अपने व्यापक ज्ञान के लिए मशहूर हैं। इस ज्ञान को जानकार प्रेक्टिशनर (गुरु) द्वारा अपने चेलों या नौसिखियों को हस्तान्तरित करने की यह स्थानीय शैक्षिक परम्परा है। जनजातीय समुदाय में ज्ञान एक सामुदायिक पूँजी है जिसका आदान-प्रदान एक सामाजिक प्रक्रिया। पेड़-पौधों की प्रारम्भिक जानकारी तो ये बच्चे अपने परिवेश से यूँ ही सीख जाते हैं। वहीं जड़ी-बूटी और तंत्र विद्या आदि बच्चे अपने समुदाय के जानकारों के साथ रहकर मौखिक रूप में सीखते हैं। स्कूली शिक्षा में निजी ज्ञान और प्रतिस्पर्धा के भाव निहित हैं।

इसके साथ ही हमारा स्कूली ज्ञान अमूर्त रूप में उनके सामने आता है और वह भी बिना किसी पूर्व सन्दर्भ के। जनजातीय समुदाय के लिए हमारी शिक्षा व्यवस्था के अपने पूर्वाग्रह भी हैं। ऐसे में जनजातीय समुदायिक ज्ञान का शिक्षा में समावेशीकरण एक चुनौती ही होगा।

विद्या सीखना

गुनिया और वैदियों की नैतिक संहिता बैगा को अपनी सेवा के बदले कोई भुगतान स्वीकार करने की अनुमति नहीं देती। विद्या के धनी होने का तकाज़ा होता है कि वे अनुरोध किए जाने पर इसका उपयोग करें। विश्वास यह है कि इन्कार करना खतरनाक होता है। लिहाज़ा, ऐसा लगता नहीं कि सीखने की प्रेरणा धन की लालसा से पैदा होती है। पूछने पर कई बच्चों ने बताया कि उन्होंने कई पेड़-पौधों का उपयोग अपने पिता, माता या बड़े भाई-बहनों से सीखा है। वे याद करते हैं कि किसी मौके पर किसी ने उस पेड़ या पौधे की तरफ इशारा करके बताया था या उस पौधे को इकट्ठा करते समय वे मौजूद थे। मगर इस ज्ञान में यह शामिल नहीं था कि दवाई कैसे बनाई जाती है और किसे दी जा सकती है। इसी प्रकार से, निदान और उपचार के मंत्र तथा विधि-विधान भी आम व अनौपचारिक ज्ञान का भाग नहीं होते। ये तो उन्हीं को पता होते हैं जिन्होंने उसे औपचारिक रूप से सीखा है।

कुछ पुरुषों ने थोड़ी विद्या औपचारिक रूप से सीखने का निर्णय शादी के बाद और बच्चे होने के बाद किया था - वे इसे उपयोगी ज्ञान बताते हैं, प्राथमिक उपचार के समान जिसकी मदद से आप बचपन में बार-बार होने वाली तकलीफों और बीमारियों को सम्भाल सकते हैं। 'लड़के की शादी

हो जाए और बच्चे हो जाएँ, तब उसे भी लगता है कि उसे भी पता होना चाहिए और वह सीखने लगता है' (हरे सिंह)। इसके लिए या तो वे कुछ समय के लिए किसी गुरु के पास गए थे या सुसंगति के ज़रिए हासिल किया था यानी जानकार व्यक्ति के साथ समय बिताकर।

ज़्यादा विशेषज्ञ ज्ञान हासिल करना कुछ ही लोग करते हैं। बाघमारा में मात्र तीन व्यक्ति थे और उनमें से भी मात्र दो को अन्य गाँवों में चिकित्सक के रूप में माना जाता था। हरे सिंह बहुत प्रतिष्ठित हैं मगर उन्होंने बताया कि पास के दलदली गाँव की आश्रम शाला में नौकरी मिलने के बाद उन्होंने यह काम छोड़ दिया है। कसाईकुण्डा में तीन लोग हैं जिनकी अच्छी प्रतिष्ठा है। इन सबने यह विद्या गुरु से सीखी है। मात्र दो मामलों में गुरु कोई निकट रिश्तेदार था - एक मामले में पिता और एक मामले में दादा। जब सीखना शुरू किया था, तब ये सब युवा थे। गुरु ढूँढ़ने के लिए खुद उन्हें पहल करनी पड़ी थी। कसाईकुण्डा और बाघमारा के मुकद्दम और हरे सिंह, जिन तीनों के पास विद्या थी, ने बताया कि विद्या बहुत कठिन है। इसके लिए कठोर परिश्रम और बलिदान की आवश्यकता होती है। विद्या सीखना विद्यार्थी के लिए काफी खर्चीला भी होता है क्योंकि इसके लिए गुरु को महुआ के फूलों से बनी दारू भेंट करना होती है। इसके लिए बहुत धैर्य भी ज़रूरी होता है। अधिकांश गुरु आसानी से या अपनी इच्छा से नहीं सिखाते बल्कि कई बोतल दारू और कई बार चक्कर काटकर उन्हें राज़ी करना पड़ता है।

जो विवरण दिया गया, उससे लगता है कि शिक्षण की प्रक्रिया में काफी धैर्य और प्रतीक्षा की ज़रूरत होती है। यह काफी सुस्त ढंग से चलती है। आम तौर पर दिन भर का कामकाज पूरा करने के बाद इसकी शिक्षा दी जाती है। आराम से बैठकर, किसी एक चेले द्वारा लाई गई दारू पीते हुए, गुरु मंत्रोच्चार सिखाता है और तब तक दोहराता है जब तक कि कण्ठस्थ न हो जाए। मैंने जो कई सारे मंत्र सुने वे स्थानीय बोली में थे, न कि किसी अनजानी विशिष्ट भाषा में। कुछ मंत्र बहुत लम्बे थे और उनमें से कुछ हिस्सा बातचीत की शैली में था*। यह ज़रूरी है कि मंत्रों को अच्छे से याद किया जाए - उन्हें बगैर रुके सुनना और बोलना पड़ता है। जिन पुरुषों से मैंने बात की, उनका दृढ़ विचार था कि उनकी विद्या लिखी नहीं जानी चाहिए। ऐसा माना जाता

---

* *मौखिक विचार और मौखिक संस्कृति की रचनाओं के लक्षण के रूप में बातचीत या संवाद रूप पर काफी कुछ कहा गया है। मंत्रोच्चार में एक लय भी होती थी और एक 'दैहिक घटक' (जैसे सूपड़े में चावल को फटकने में हाथों की गतियाँ या हाथों में छोटी-छोटी डण्डियाँ पकड़ना) होता था। 'भाषा का कर्मकाण्डीय उपयोग' और 'वाचालता' अनुपस्थित थे (ओंग)।*

है कि जिस ज्ञान में आँखों की मध्यस्थता की ज़रूरत हो, वह कम प्रत्यक्ष होता है और इसलिए उतना शुद्ध (पवित्र) नहीं होता जितना कि वह ज्ञान होता है जिसे याद करके बोला जाता है - 'सुमिरन'। पूछने पर उन्होंने यह भी बताया कि उनके गुरु उन्हें एक बार जंगल ले गए थे जहाँ पौधों के नाम और उनके उपयोग बताए थे।

हरेली और दीवाली त्योहारों के बीच की अवधि (लगभग जुलाई से अक्टूबर) सीखने के लिए विशेष रूप से शुभ मानी जाती है। चेला हरेली के दिन 'प्रवेश' करता है और यदि गुरु का आदेश हुआ तो दीवाली के दिन 'निकलता' है। शिष्यवृत्ति की पूरी प्रक्रिया गोपनीयता के पर्दे में चलती है। कौन किससे सीख रहा है इसके बारे में हमेशा यह कहा जाता है कि ऐसा सुना है। शिष्यवृत्ति के दौरान गुरु द्वारा चेले की परीक्षा की धारणा भी है - दो चेलों ने बताया कि उन्हें पारलौकिक शक्ति की परीक्षा दी गई थी। उन्होंने पढ़ाई के अन्त में परीक्षा की बात भी बताई, जिसके बाद उन्हें उत्तीर्ण घोषित किया गया था। उत्तीर्ण घोषित करने का तरीका यह है कि गुरु पीठ थपथपाए और थोड़ी दारू पीने को दे। गुरु के साथ अभ्यास (प्रेक्टिस) करने की कोई अवधि नहीं होती। मगर ऐसा लगता है कि औपचारिक शिक्षण के बाद ऐसे अवसर होते हैं जब चेला निदान और उपचार होते हुए देखता है।

कोई चेला कई गुरुओं से सीख सकता है - ऐसा माना जाता है कि अलग-अलग गुरुओं के पास सिखाने के लिए अलग-अलग विशेषज्ञताएँ हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, सर्पदंश का उपचार एक जानी-मानी विशेषज्ञता है। मगर अति-विद्या खतरनाक मानी जाती है। एक गहरा विश्वास है कि यदि आपके पास विद्या है और आप उसका उपयोग नहीं करते, तो यह आपको नुकसान पहुँचा सकता है। इसी प्रकार से, यदि हर वर्ष दीवाली के समय विद्या का सम्मान न किया जाए, तो जानने वाला पागल हो जाता है। हालाँकि, वैदियों और गुनियाओं को कोई भुगतान नहीं मिलता मगर उनकी प्रतिष्ठा काफी अधिक होती है और उन्हें महत्व मिलता है। जड़ी-बूटियों की मदद से इन विशेषज्ञों द्वारा किए गए चमत्कारिक उपचार की बहुत बातें होती हैं। मगर अपेक्षा यह होती है कि ये पुरुष स्वयं विनम्र बने रहेंगे और खुद का ढिंढोरा नहीं पीटेंगे। दरअसल, हरे सिंह को छोड़ दें तो इन लोगों ने कभी सीधे-सीधे मुझे यह नहीं बताया कि उन्हें साधारण से ज़्यादा कुछ पता है। वे काफी रहस्यमय थे मगर उन्हें उनकी विद्या के प्रति मेरे कौतूहल को देखकर थोड़ी खुशी भी हो रही थी।

'विद्या सीखने' के कई पहलुओं का अन्देशा बचपन के समाजीकरण में होता है। शायद सबसे महत्वपूर्ण पहलू सीखने वाले की स्वायत्तता और

होता है कि अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग स्तर तक सीखेंगे और उसी अनुसार अलग-अलग तरह से कामकाज करेंगे। सीखने का अधिकांश काम किसी उत्पादक कार्य के दौरान व उसके साथ-साथ होता है। अर्थात् काम और खेलकूद, फुरसत और श्रम के बीच सरहदें बहुत धुँधली हैं। सीखने के परिवेश, चाहे परिवार में हो या साथियों के बीच, में दक्षता और कार्य में सहभागिता और प्रत्यक्ष भागीदारी के कई दायरे होते हैं।

दो मामलों में वैदियों ने विद्या तब सीखी थी जब वे लड़के ही थे। यह विद्या उन्होंने अपने रिश्तेदारों से उस समय सीखी थी जब वे उनके लिए काम करते थे। लगता है कि इनके मामले में रिश्तेदार उन्हें सिखाना चाहते थे। यहाँ सम्मान परस्पर था - बच्चे के मन में रिश्तेदार के प्रति और रिश्तेदार के मन में बच्चे के प्रति। कुल मिलाकर, बच्चों और वयस्कों के बीच और स्वयं वयस्कों के बीच ऊँच-नीच से मुक्त रिश्ते बैगा समाज का एक लक्षण है। काफी छुटपन से ही बच्चों की इच्छा का सम्मान किया जाता है, उनकी क्षमताओं को पहचाना जाता है और सराहा जाता है। उम्र का आदर होता है; सियान और सियानिन अर्थात् बुज़ुर्ग पुरुषों और बुज़ुर्ग महिलाओं को बैठकों, उत्सवों और अनुष्ठानों में विशेष स्थान दिया

पहल लेने की क्षमता में है। सीखने वाले द्वारा पहलकदमी बचपन का एक आम गुण है जहाँ बच्चे पर कभी कुछ करने का दबाव नहीं बनाया जाता बल्कि उन्हें अवसर दिया जाता है कि वे स्वयं पहल करें और चलती हुई गतिविधियों में भागीदारी करें। उतनी ही महत्वपूर्ण बात यह है कि सीखने की रफ्तार सीखने वाले द्वारा तय की जाती है। वे इसका निर्णय अपनी तैयारी को देखकर करते हैं। अधिकांश मामलों में बच्चे किसी गतिविधि से किसी भी समय बाहर जाने का फैसला कर सकते हैं और इसमें किसी के तानों या बदनामी का कोई डर नहीं होता। हरेक व्यक्ति से एक बराबर दक्षता या रुचि की उम्मीद नहीं की जाती। यह भी स्वीकार्य

जाता है। अलबत्ता, इन रिश्तों में न तो दबने का भाव होता है न दादागिरी का। कई कार्रवाइयों के फैसले और अन्य निर्णय सलाह-मशवरे - सलाही - के आधार पर किए जाते हैं। बुज़ुर्ग लोगों की राय ली जाती है मगर युवा लोग भी बोलते हैं। सभी लोग थोड़ा बोलते हैं और बहुत सोच-समझकर, हिचक के साथ और हल्के-फुल्के हास्य के साथ बोलते हैं।

विद्यार्थी अपने गुरु के साथ जंगल का भ्रमण शायद एक-दो बार ही करते हैं। जंगल में संक्षिप्त-सा भ्रमण यह मानकर किया जाता है कि आसपास के वनस्पति जगत से एक मोटा-मोटा परिचय तो है ही, और ऐसा मानना शायद गलत भी नहीं है। बहुत छोटी उम्र से ही बच्चों में जंगल को लेकर जागरूकता दिखाई देती है। सर्वप्रथम तो जंगल खाने योग्य चीज़ों की धरती है और ऐसी चीज़ों से भरी है जो मानव दिलचस्पी की हैं - उपयोगी पेड़-पौधे, जड़ें एवं फल, खाने योग्य जानवर, पौधे और कीड़े व जन्तुओं के दर्शनीय क्रियाकलाप जो शायद डरने और सचेत रहने के सबब भी हैं। उन्हें कई पौधों और कीड़ों के नाम काफी बारीकी से मालूम थे। जैसे, कोइलाड और कचनार दो पेड़ों के नाम हैं जो बाकी सब मामलों में हूबहू एक जैसे होते हैं मगर यह अन्तर होता है कि कोइलाड की पत्तियाँ खाने योग्य होती हैं जबकि कचनार की नहीं। इसी प्रकार से अधिकांश बैगा लोग दो प्रकार के बाँसों में भेद कर पाते हैं, मगर कुछ लोग पाँच प्रकार जानते हैं।

स्कूल और स्कूल से बाहर

मैंने जिन लक्षणों का वर्णन किया है, वे ओंग और गुडी द्वारा तथा एक शैक्षणिक परिप्रेक्ष्य में टीसडेल और आइकमैन द्वारा वर्णित मौखिक संस्कृतियों में ज्ञान-सम्बन्धी गति-विधियों के समान ही हैं। इनमें विचार और गतिविधि का सन्दर्भ में अन्तःस्थापित होना, विचारों का विश्लेषणात्मक श्रेणीकरण की बजाय समेकित व योगशील (aggregative and cumulative) संगठन, अमूर्त शिक्षण कार्य की बजाय वास्तविक काम करके सीखना शामिल हैं। यह गौरतलब है कि बैगा अपेक्षाकृत औपचारिक सीखने यानी मंत्र सीखने की एक अवधि को मान्य करते हैं। मौखिक समुदायों की तथाकथित 'रूढ़िवादिता' के अवलोकन के विपरीत यहाँ मौखिक रूप से प्रसारित व याद करने वाले पवित्र ज्ञान की वास्तविक विषयवस्तु और स्वरूप को लेकर काफी सोचा-समझा लचीलापन है। एक से अधिक गुनिया ने कहा कि विभिन्न लोगों को ज्ञात 'चर्चा' (यानी पवित्र ज्ञान और मंत्र) मूलतः एक समान हैं, मगर कुछ अन्तर हो सकते हैं क्योंकि आखिरकार यह 'बात-कहा' (यानी कहा जाने वाला) है और बदल सकता है। यह उन अन्य भारतीय समुदायों के रूढ़िवाद से भिन्न है जिनमें लिखित ज्ञान (शास्त्रिक ज्ञान) को मौखिक रूप से

प्रसारित करने की परम्परा है, जहाँ इस बात के विस्तृत उपाय लागू किए गए हैं कि कहीं कोई विकृति न आने पाए (वैदिक शिक्षा की बारीकियों को जानने के लिए देखें मुखर्जी और नरसिंहन)। खामोशी की सहजता, चाहे अकेले में हो या जब दो गुनिया एक साथ किसी मरीज़ का इलाज करने के लिए आएँ तब हो, बैगा मिज़ाज का एक अनिवार्य गुण है कि वे कुछ न कहकर या कुछ न कहने की ज़रूरत के समय सहज रहते हैं।

इसके साथ ही हमें अन्य गुणों को भी पहचानना होगा जो जीवन-निर्वाह स्तर की अर्थ-व्यवस्था से जुड़े हैं। एक है कि बचपन (शैशव के बाद की अवस्था) को वयस्कपन से अलग करके नहीं देखा जाता। जहाँ बच्चों को काफी कम उम्र से ही उत्पादक काम में जोड़ा जाता है, वहीं वयस्क लोग खिलन्दड़ी लड़कपन से लैस होते हैं। दूसरा है, समाज का ऊँच-नीच से मुक्त और परिवार का गैर-तानाशाही पूर्ण ढाँचा। बच्चों की इच्छा और पहल की स्वीकार्यता एक ऐसी उत्पादन प्रक्रिया से जुड़ी है जिसमें बच्चों के श्रम का मूल्य है और उसका महत्व समझा जाता है।

आधुनिक स्कूल संस्था ज्ञान की प्रकृति, सीखने और बचपन को लेकर अलग मान्यताओं पर टिकी है। आधुनिक स्कूल की बुनियाद साक्षर परम्परा में है और यह ज्ञान को अनिवार्य रूप 'सन्दर्भ से बाहर' प्रस्तुत करती है, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया जा सकता। स्कूल वास्तविक विश्व पर नहीं बल्कि 'विश्व के मॉडल' पर क्रिया करना सिखाता है। इसके लिए बारीकियों और अन्तर्सम्बम्धों की स्पष्ट पहचान की मांग करता है। यह ज़रूरी होता है कि चीज़ों के सारे पहलुओं, प्रत्यक्ष रूप से ज़ाहिर पहलुओं तक, की बात की जाए, तभी उन्हें समझने, विश्लेषण और विचार के योग्य बनाया जा सकता है। नरसिहंन का सुझाव है कि यही स्कूल से प्राप्त ज्ञान की प्रमुख शक्ति भी है। यह स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है और इसे व्यापक रूप से उपयोग किया जा सकता है क्योंकि यह विश्लेषणात्मक, सटीक और अमूर्त होता है। लाइबेरिया में साक्षरता के स्वरूपों पर अपने अध्ययन में कोल व स्क्रिबनर

ने बताया है कि स्कूली शिक्षा का सबसे गोचर व अविवादित परिणाम यह हुआ है कि इससे कृत्रिम रूप से निर्मित परिस्थितियों में व्याख्यात्मक चर्चा की क्षमता मज़बूत हुई है। यह भी देखा गया कि गैर-स्कूली लोगों की अपेक्षा स्कूली शिक्षा प्राप्त लोग सिलॉजिस्म तर्क (एक प्रकार का तर्क जिसमें दो मान्यताओं के आधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जाता है) का ज़्यादा उपयोग करते हैं। स्टिंग बताते हैं कि साक्षरता व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध को भी बदल देती है और व्यक्तिनिष्ठता में एक परिवर्तन पैदा करती है। हालाँकि, साक्षरता का ढाँचा स्वयं सामाजिक कानूनों और सांस्कृतिक परम्पराओं से बँधा होता है मगर ये व्यक्ति का सम्पूर्ण निर्धारण नहीं करते, व्यक्ति का समीक्षात्मक अलगाव और स्वायत्तता बरकरार रखते हैं। 'उसका सामाजिक व सांस्कृतिक अंगीकरण उसके अपने प्रोसेसिंग और मध्यस्थता पर निर्भर करता है।' यह सही है कि लेखन से ज्ञान के सामाजिक भण्डार को स्थायी रूप से जड़ कर देने की गुंजाइश बनती है, जो विशिष्ट स्थितियों, व्यक्तियों से परे हो और अमूर्त, व्यवस्थित और सिद्धान्ततः आम तौर पर सुगम हो, मगर यह किसी व्यक्ति (जानने वाले) और लिखित संग्रहित ज्ञान के बीच एक खाई भी पैदा कर देता है।

साक्षर विश्व का सामाजिक व सांस्कृतिक क्षितिज परस्पर व्याप्त

व्यक्तिनिष्ठताओं से बना होने के चलते, खण्डित और बहुलतापूर्ण होता है। बोण्डो हाइलैण्डर आदिवासियों के अपने अध्ययन में बिक्रम नंदा ने पाया कि स्कूल न सिर्फ भौतिक अतिशेष (सरप्लस) मानकर चलता है बल्कि एक सांकेतिक अतिशेष भी मानकर चलता हैः 'स्कूल का पाठ्यक्रम जाने-अनजाने में उन लोगों के लिए बचपन की एक अवधारणा लेकर चलता है, जिन्हें उस पाठ्यक्रम का उपभोग करना है। मगर किसी जीवन-निर्वाह स्तर की उत्पादन प्रणाली में बचपन जीवन की एक अलग-थलग अवस्था नहीं होती'। इसके अलावा, औपचारिक स्कूल की शिक्षण पद्धति में एक अथॉरिटी निहित होती है। सीखना भी निजी और प्रतिस्पर्धात्मक होता है।

इन दो परस्पर विपरीत तस्वीरों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य औपचारिक शिक्षा पर हल्ला बोलना नहीं है। सीखने की 'सन्दर्भ से परे' प्रकृति या शिक्षण विधि की अथॉरिटी जैसे लक्षणों पर गौर करते हुए यह भी देखना चाहिए कि ये औपचारिक स्कूल नामक संस्था की 'समस्या' नहीं है बल्कि यह तो उसकी बुनियाद का चरित्र है और यही है जो उसे आधुनिकीकरण की एक संस्था बनाता है और आधुनिक विश्व के अनुकूल बनाता है। यह बात उस ज्ञान की अवधारणा में, जिस पर वह टिका है, उत्पादन की दुनिया से उसके रिश्ते में, और बचपन की प्रकृति, जिसे वह मानकर चलता है और जिस पर वह आधारित है, में निहित है। हम यह मानने को विवश हैं कि मौखिक, जीवन-निर्वाह स्तर के बैगा समुदाय के बच्चों के परिवेश और स्कूल के बीच एक गहरा अलगाव है।

यह भिन्नता प्रस्तुत करने का मेरा उद्देश्य यह दर्शाना है कि बैगा ज्ञान परम्परा, कम-से-कम अपने वर्तमान रूप में, आधुनिक स्कूल संस्था में जीवित नहीं रह सकती। उद्देश्य तालमेल बनाने के सम्भावित बिन्दु खोजना नहीं है। आप चाहें तो बैगा ज्ञान के आधार पर ऐसे सीखने के कार्य बना सकते हैं जिन्हें स्कूल में लाया जा सके। उदाहरण के लिए, सजीव-वर्गीकरण या हर्बेरियम बनाने जैसे कार्य। मगर यह तो किसी जीवन्त गतिशील संस्कृति में पेड़-पौधे को देखने के ढंग का सरलीकरण व मामूलीकरण होगा कि हरेक पौधे को एक वस्तु में तबदील कर दिया, जिसका अवलोकन व चर्चा की जा सके या उसे ऐसे गुण प्रदान कर दिए जाएँ जो बैगा प्रणाली में दिलचस्पी के विषय ही न हों और शायद ध्यान भटकाने वाले हों। मंत्र और श्लोक आदि को लिखा गया तो वे शायद बचेंगे नहीं और शायद अपनी पवित्रता खो देंगे क्योंकि लेखन की तकनीक हर चीज़ के 'सन्दर्भ से परे' तहकीकात को सम्भव बना देती है। अध्ययन की वस्तु में तबदील हो जाने के परिणाम तो और भी घातक हो सकते हैं। मसलन, सोचिए कि आपको जादू-टोने पर आधारित किसी पाठ्य वस्तु से सम्बन्धित बोधगम्यता (comprehension) के सवालों के जवाब देने हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि जो लचीलापन, पहलकदमी और साथियों से अन्तर्क्रिया विद्या के ज्ञान में गुँथी हुई है और जो बच्चे के परिवेश में विद्यमान है, को एक ऐसी संस्था में फिर से पाया जा सकता है जिसमें शैक्षिक अथॉरिटी केन्द्रीय चीज़ है। दूसरी ओर, विद्या सीखने के लिए ज़रूरी अनुशासन सीखने वाले पर एक प्रेक्टिशनर के तौर पर कहीं ज़्यादा ज़िम्मेदारी डालता है, जो औपचारिक स्कूल पैदा नहीं करता। ज़ाहिर है, इस देशज ज्ञान को स्कूल की साक्षर संस्कृति के अनुकूल पुनर्निर्मित करने के लिए ज़रूरी होगा कि उस ज्ञान की विषयवस्तु, स्वरूप और उपयोग के बारे में कहीं ज़्यादा

जानकारी हो**।

मैं यह बात सिर्फ आदिवासी समुदायों के देशज ज्ञान के सन्दर्भ में नहीं, बल्कि साक्षर शास्त्रिक ज्ञान प्रणालियों के सन्दर्भ में भी कह रही हूँ। ज्योतिष को विश्वविद्यालय के एक कोर्स के रूप में शामिल करना शायद ज्योतिष ज्ञान के लिए घातक साबित हो क्योंकि अब यह, आधुनिक संस्थाओं के ज्ञान-शास्त्रीय तौर-तरीकों के चलते, स्वयं उस ज्ञान के प्रति एक नए स्तर की जागरूकता के लिए खुल जाएगा। पाठ्य सामग्रियों, बोधगम्यता, सवालों और परीक्षा के ज़रिए ज्ञान का नए किस्म का वस्तुकरण इसका हिस्सा है***।

देशज ज्ञान प्रणालियों का अस्तित्व शायद ज़्यादा सुनिश्चित रहेगा यदि उन्हें औपचारिक आधुनिक शिक्षा तंत्र के दायरे से बाहर रखा जाए।

** *औपचारिक सीखने की ज़रूरतों के एक एहसास का एक परिणाम यह भी होता है कि देशज संस्कृतियाँ ऐसे नए उत्पादों का आविष्कार करने लगती हैं जो उन्हें लगता है कि 'आधुनिक' सन्दर्भों में ज़्यादा उपयुक्त या योग्य हैं। कृष्ण कुमार की दलील है कि हिन्दी साक्षर परम्परा में 'निबन्ध' की विधा ब्रिटिश औपनिवेशिक शिक्षा तंत्र में हिन्दी को स्कूल में अध्ययन के एक विषय के रूप में सम्मिलित करने के उपरान्त पैदा हुई ज़रूरत के जवाब में आई थी। तमिलनाडु के साक्षरता अभियान से जुड़े एक मित्र ने देखा था कि जब उन्होंने नव साक्षर महिलाओं के लिए अपनी पारम्परिक चित्रकला की प्रतियोगिता आयोजित की, तब महिलाओं ने अपने पारम्परिक पैटर्न की बजाय साक्षरता के नारों से जुड़े चित्र बनाए थे।*

*** *कृष्ण कुमार ने हाल ही में मुझे बताया था कि ज्योतिष को भारतीय विश्वविद्यालयों में एक विषय के रूप में शामिल करने की गर्मागरम बहसों में ज्ञान-शास्त्रीय आयाम पर बात नहीं हुई।*

पद्मा सारंगपाणी: भौतिक शास्त्र में एम.एससी. और शिक्षा में पीएच.डी.। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़, बैंगलोर और टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल सांइसिस, मुम्बई में प्रोफेसर रही हैं। पिछले दशक से उनकी विशेषज्ञता और शोध कुछ खास क्षेत्रों में रहे हैं जैसे गुणवत्ता और शिक्षा, शिक्षक, पढ़ाना और शिक्षक शास्त्र, पाठ्यक्रम शिक्षा, देसी ज्ञान और गैर-स्कूली हालातों में ज्ञान का संचार व प्रारम्भिक शिक्षा। इन्दिरा गाँधी मेमोरियल फैलोशिप के सहारे उन्होंने वह शोध किया जिस पर यह लेख आधारित है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी चित्र: सौम्या शुक्ला: सेंट जोसफ कॉन्वेंट स्कूल, भोपाल से हाल ही में 12वीं की परीक्षा उत्तीर्ण की है। स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं।

यह लेख 'कम्पैरेटिव एजुकेशन' पत्रिका के अंक 39 (नं 2), पृष्ठ 119-209 में कारफैक्स पब्लिशिंग द्वारा छापा गया था।

लेख में ज़िक्र सन्दर्भों की पूरी सूची के लिए मूल लेख देखें।

भाग-1

समझकर पढ़ना सीखना

सभी चित्र: कनक शशि

कीर्ति जयराम

यह लेख ऐसे समय पर लिखा जा रहा है जब देश भर में इस बात पर बहुत व्यापक चिन्ता व्यक्त की जा रही है कि स्कूलों में बहुत बड़ी संख्या में बच्चे 'सीख नहीं पा रहे' हैं। शिक्षा सम्बन्धी कई ताज़ा दस्तावेज़ों और चर्चाओं में इसे शिक्षा के क्षेत्र में एक गम्भीर संकट बताया गया है। हाल ही में बड़े पैमाने पर किए गए कई आकलनों में भी बार-बार इस बात की तरफ इशारा किया जा रहा है कि देश के विभिन्न भागों में बहुत सारे बच्चे सिर्फ रट कर पास हो रहे हैं। वे अर्थपूर्वक पढ़ने, लिखने और अंकगणित की प्रारम्भिक क्षमताएँ भी हासिल नहीं कर पा रहे हैं। इसका मतलब है कि ऐसे बच्चों को पढ़ने, लिखने और सोचने में स्वतंत्र रूप से समर्थ नहीं माना जा सकता।

हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे न केवल यह समझें कि वे क्या पढ़ रहे हैं बल्कि उन्हें पढ़ने में मज़ा आए। वे लिखित सामग्री की व्याख्या कर सकें और उससे पाई गई सीख को स्कूल में, अपने दैनिक जीवन में और सीखने के अलग-अलग क्षेत्रों में प्रयोग कर सकें। इस मकसद से प्रारम्भिक साक्षरता के साहित्य में कुछ ऐसे तरीके उपलब्ध हैं जिनके सहारे हम अपने बच्चों को समझ से पढ़ने वाले सक्रिय, चिन्तन-

शील और उत्साही पाठक बना सकें। इस लेख में इन तरीकों को कुछ हद तक समझने की कोशिश की जाएगी।

पृष्ठभूमि

अगर हम प्रारम्भिक कक्षाओं में पढ़ने और लिखने के सवाल पर गौर करते हैं तो उस समय स्थिति और पेचीदा दिखाई देने लगती है जब हम देश के एक कोने से दूसरे कोने तक विद्यार्थियों, अध्यापकों और पढ़ने-सीखने के माहौल में बेहिसाब विविधता पर ध्यान देते हैं। हालाँकि बच्चे कुदरती तौर पर अपने नए अनुभवों को 'बूझने' में सक्षम होते हैं मगर स्कूली और घरेलू भाषा का फर्क तथा स्कूल की संस्कृति और घर की संस्कृति का भेद बहुत सारे बच्चों के लिए एक ऐसी समस्या बन जाता है जिससे वे पार नहीं निकल पाते। लिहाज़ा, उन्हें स्कूल के अनुभव अजनबी और पराए लगने लगते हैं जिनसे वे कोई सार्थक जुड़ाव महसूस नहीं कर पाते। जब तक स्कूली शिक्षा को बच्चों के जीवन और अनुभवों के साथ जोड़ने के लिए सोच-समझ कर कोशिशें नहीं की जाएँगी तब तक सम्भवतः असंख्य बच्चे कक्षा के भीतर पढ़ने व लिखने की अपनी कोशिशों को सिर्फ स्कूल और पाठ्यचर्या का हिस्सा ही मानते रहेंगे और उनके साथ केवल यांत्रिक और निरर्थक ढंग से जूझते रहेंगे। प्रारम्भिक साक्षरता पर हमारे पास जो साहित्य उपलब्ध है, उसमें भी इसी बात पर ज़ोर दिया जा रहा है कि जब छोटे-छोटे बच्चे पढ़ने व लिखने के अनुभवों को अपने जीवन के साथ जोड़ने में सक्षम नहीं हो पाते हैं, वे उन्हें अपनी सोच या अपने अनुभवों का हिस्सा नहीं बना पाते हैं तो उनका कक्षा के पाठों से कोई अन्तरंग रिश्ता नहीं बन पाता और लिहाज़ा, वे उनको समझने में सक्षम नहीं हो पाते।

भाषा सीखने-सिखाने की वर्तमान सोच के पीछे यह अवधारणा है कि बच्चे दुनिया के बारे में अपनी समझ और ज्ञान का निर्माण स्वयं करते हैं। यह निर्माण किसी के सिखाए जाने से नहीं, बल्कि बच्चों के खुद के अनुभवों व सक्रिय खोजबीन द्वारा होता है। यहाँ तक कि वे भाषा की ध्वनि संरचना के जटिल नियमों को स्वयं ही, बिना किसी के सिखाए, सीख लेते हैं और पूर्ण रूप से अपनी मातृभाषा आत्मसात करने के बाद ही स्कूल में प्रवेश करते हैं। इस सोच के अन्तर्गत शुरुआती बाल अवस्था में ही बच्चे अपने सामाजिक परिवेश से अर्थ निर्माण करने के तौर-तरीके सीख लेते हैं और इन्हें अपने दैनिक जीवन के अनुभवों पर लागू करके, अपनी आसपास की दुनिया को समझने का प्रयास करते हैं। मौखिक भाषा उनकी जिज्ञासा, उनके विचार, अभिव्यक्ति, कल्पना और प्रश्न प्रकट करने का माध्यम बन जाती है, और इस भाषा का प्रयोग करके ही वे अपनी भाषाई क्षमताएँ सुदृढ़ बनाते जाते हैं।

जिस तरह शुरुआती बालावस्था

में नन्हे बच्चे अपने परिवार के सदस्यों से, और अपने आसपास से आदान-प्रदान करके खुद ही बोलना सीख जाते हैं, उसी तरह से यह देखा गया है कि जिन बच्चों को अपने घरों में लिखित माहौल मिलता है वे स्कूल में प्रवेश करने से पहले ही, खुद से कुछ हद तक लिखना-पढ़ना सीख जाते हैं। उदाहरण के तौर पर, वे पहचान लेते हैं कि लिखने-पढ़ने की प्रक्रिया एक अर्थपूर्ण प्रक्रिया है और जो बात वे बोल कर कहते हैं उसे लिखकर भी कहा जाता है। साथ में वे लिखित शब्दों का प्रयोग भी अपने स्वाभाविक तरीकों से करने लगते हैं, चाहे वह अखबार या पुस्तक पढ़ने का अनुकरण हो, चिट्ठी लिखने का नाटक हो या अपनी उँगली को बाँए-से-दाँए की ओर चलाकर कहानी पढ़ने की कोशिश। उच्चारित शब्दों का लिखित शब्दों से तालमेल चाहे बने या न बने, इन नन्हे बच्चों के लिए उनका गोल-मटोल, ऊट-पटांग लेखन और उसका पठन, सब वास्तविक पढ़ने-लिखने के अनुभव बन जाते हैं। इन बच्चों की तुलना में जिन बच्चों को शुरुआती बालावस्था में ऐसा लिखित माहौल घर में नहीं मिलता है वे इन अनुभवों से वंचित रह जाते हैं। उनके लिए स्कूल के अपरिचित लिखित माहौल से जुड़ना अक्सर एक चुनौती बन जाती है।

पढ़ना किसे कहते हैं?

प्रारम्भिक साक्षरता के साहित्य में पढ़ना एक रचनात्मक प्रक्रिया मानी

गई है। इस सोच का मानना है कि पढ़ने की प्रक्रिया में पाठक द्वारा लिखित शब्दों का सक्रिय आदान-प्रदान करके अर्थ का निर्माण किया जाता है। बच्चे अर्थ और समझ बनाने के लिए अपने अनुभवों और पूर्व ज्ञान का उपयोग करते हैं। इस सोच के अन्तर्गत एक बच्चे की पृष्ठभूमि, उसका परिवेश और अनुभव उसके लिए लिखित सामग्री की समझ निर्माण करने का आधार बन जाते हैं। यही कारण है कि कक्षा के भीतर बच्चों की विविधता को पहचानना ज़रूरी होता है ताकि बच्चों के अलग-अलग अनुभव, उनकी व्यक्तिगत सोच और उनके पूर्व-ज्ञान को कक्षा के कार्य में जगह मिल सके, और वे समझ से कक्षा की प्रक्रिया में जुड़ पाएँ। केवल एक सही उत्तर वाली पाठ्यपुस्तिका की गतिविधियाँ विभिन्न सन्दर्भों से आने वाले बच्चों के लिए अक्सर दिक्कत पैदा करती हैं।

पढ़ने से सम्बन्धित शोधों में यह बात भी दिनोदिन साफ होती जा रही है कि कोई भी बच्चा एक ही तरह से

नहीं पढ़ता। पढ़ने की हर कोशिश इन तीन बातों से तय होती है जो पढ़ने की क्रिया को सार्थक या निरर्थक अनुभव में तब्दील कर सकती हैं:

- पढ़ने वाले के स्तर और विषयवस्तु के हिसाब से पाठ की उपयुक्तता;
- पाठक का कौशल तथा पढ़ने के प्रति उसकी रुचि और इच्छा जो कि पढ़ने के उद्देश्य से यानी इस बात से तय होती है वह क्यों पढ़ रहा है; तथा
- पढ़ने का सन्दर्भ या गतिविधि।

इसका मतलब है कि पढ़ने की क्रिया पर हमारे बौद्धिक, भाषायी, सामाजिक एवं भावनात्मक आयामों का सीधा असर पड़ता है। कक्षा की खासियतें, जैसे अध्यापक की उम्मीदें और विद्यार्थियों का सहज महसूस करना, ये भी महत्वपूर्ण पहलू हैं क्योंकि काफी हद तक इन्हीं से यह तय होता है कि कोई बच्चा किसी पाठ को किस तरह से देखता है।

बच्चों को लिपिबद्ध चिन्ह और उनकी ध्वनि से परिचित कराने के तरीकों पर प्रारम्भिक साक्षरता के साहित्य में विवाद चला है, यानी इन्हें नियंत्रित और क्रमिक तरीके से सिखाना चाहिए या नहीं। एक विचारधारा यह मानती है कि कुछ अक्षर बाकी अक्षरों की अपेक्षा अधिक उपयोगी हैं और इन्हें पहले सिखाया जाए। वहीं एक दूसरी विचारधारा है कि बच्चों को अक्षर के चिन्ह व उनकी ध्वनियाँ स्वाभाविक तौर से, एक वास्तविक सन्दर्भ में अथवा रोज़मर्रा के जीवन से जोड़कर सिखाए जाएँ जो कि कक्षा के विभिन्न पाठकों के लिए काफी मायने रखती हैं, और इस तरह से पठन प्रक्रिया उनके लिए सार्थक बन जाती है। वर्तमान सोच के तहत इन दोनों विचारधाराओं का सन्तुलित मिश्रण सबसे उपयोगी माना गया है।

समझ के बारे में?

अमेरिकी कांग्रेस ने प्रारम्भिक पठन क्षमता के क्षेत्र में किए गए हज़ारों शोध अध्ययनों का मूल्यांकन करने के लिए कुछ साल पहले नेशनल पैनल फॉर रीडिंग (एनपीआर) का गठन किया था। इस पैनल की रिपोर्ट 'टीचिंग चिल्ड्रन टू रीड' के आधार पर, अध्यापकों और शिक्षाविदों ने पठन सम्बन्धी निर्देशों का बारीकी से अध्ययन शुरू किया। उन्होंने कक्षा में होने वाली ऐसी प्रक्रियाओं व शिक्षा पद्धतियों को

पहचानने की कोशिश की है जो उद्देश्यपूर्वक और सार्थक ढंग से पढ़ने और लिखने में सहायता दे सकती हैं। इस सोच-विचार से पठन विशेषज्ञों में यह समझ पैदा हुई है कि अगर बच्चों में शब्दों को पहचानने के कौशल बढ़ाए जाएँ और साथ में उनके पढ़ने-लिखने के प्रवाह, उनकी शब्दावली और समझने के उनके तरीकों पर ध्यान दिया जाए तो वे ज़्यादा अच्छी तरह पढ़ना सीख सकते हैं। इस धारा के अध्ययनों द्वारा किसी पाठ को पढ़कर या सुनकर समझने की दक्षता को पठन शिक्षा के एक महत्वपूर्ण लक्ष्य के रूप में रेखांकित किया जा रहा है।

पढ़कर समझने को एक ऐच्छिक और सक्रिय प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है जो पढ़ने से पहले, पढ़ने के दौरान और पढ़ने के बाद तक फैली होती है। पढ़ कर समझने की प्रक्रिया के दो हिस्से होते हैं: शब्दावली का ज्ञान और लिखित पाठ को समझ पाना। किसी पाठ[1] (text) का अर्थ समझने के लिए ज़रूरी है कि पहले बच्चा लिखे हुए शब्दों को पढ़ने और उनको समझने में सक्षम हो। अगर कोई बच्चा शब्दों को पढ़ने और समझने में ही मुश्किल महसूस करने लगता है तो वह कहानी के पूरे खाके को नहीं समझ पाएगा। अलग-अलग शब्दों या अलग-अलग वाक्यों की इस समझदारी को स्थानीय समझ (local comprehension) कहते हैं। प्रत्येक शब्द या वाक्य को समझने के योग्य होने के साथ-साथ यह भी ज़रूरी है कि बच्चा उन्हें एक साथ रखकर यह समझने में सक्षम हो कि पूरा पाठ या पूरी कहानी क्या कहने की कोशिश कर रहे हैं। इस तरह की व्यापक समझ को सार्विक समझ (global comprehension) कहा जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में पाठक शब्दों की जानकारी और समझ यानी शब्द ज्ञान के साथ-साथ अपने पूर्व-ज्ञान और दैनिक जीवन के अनुभवों का भी प्रयोग करते हैं, जिन्हें विशेषज्ञों द्वारा विश्व-ज्ञान कहा जाता है। इन दोनों के सक्रिय तालमेल से एक पाठक लिखित सामग्री से अर्थ का निर्माण करता है ताकि वह उसे समझ से पढ़ पाए।

काफी समय पहले, 1978-79 में, डॉलोरेस डर्किन्स ने बड़े धैर्य से सैंकड़ों घण्टे तक कक्षाओं का अवलोकन किया था। इस अध्ययन के बाद उनका निष्कर्ष यह था कि अध्यापक अपने विद्यार्थियों की पठन क्षमता का आकलन तो करते थे लकिन वे उन्हें समझ से पढ़ने के तरीके नहीं सिखा रह थे और न ही वे बच्चों को ऐसी कोई विशेष मदद देते थे जिनसे बच्चे सीखें कि

---

[1] ***पाठ*** *शब्द अँग्रेज़ी के text शब्द के लिए प्रयोग किया गया है। इस शब्द का प्रयोग भिन्न प्रकार की लिखित सामग्री को ध्यान में रखकर किया गया है, जैसे कहानी, कविता, व्याख्या, पत्र, लेख, नोट और चित्रकथा इत्यादि। यानी पाठ शब्द द्वारा ऐसी सभी लिखित सामग्री को सम्बोधित किया गया है और न केवल पाठ्य-पुस्तिका के पाठ को।*

अच्छी तरह से पढ़ने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए। यानी, ज़्यादातर अध्यापक समझने की दक्षताओं को आँकते तो हैं मगर वे समझ से पढ़ने के तौर तरीके नहीं सिखाते। डर्किन्स के इस निष्कर्ष तथा एनपीआर रिपोर्ट के आलोक में अब इस बात पर एक सहमति बन चुकी है कि लिखित सामग्री को समझने के तरीके भी सिखाए जा सकते हैं और उनको सिखाना ज़रूरी है। मगर, फोन्टास एवं पिनेल ने यहाँ एक हिदायत भी दी है जिसको ज़हन में रखना ज़रूरी है:

"बेशक, हमारा गहरा विश्वास है कि विद्यार्थियों को सक्षम पाठक बनने के लिए मदद दी जानी चाहिए, ताकि वे नाना प्रकार की अर्थ-ग्रहण (comprehension) रणनीतियों का इस्तेमाल करना सीख सकें, मगर हमें इस बात का भी ख्याल रखना होगा कि हम ऐसा क्यों करना चाहते हैं। बुनियादी बात यह है कि हम उत्साही और लगनशील पाठक तैयार करना चाहते हैं – यानी ऐसे विद्यार्थी जो न केवल पढ़ सकते हों बल्कि जो पढ़ते हों, जिनमें पढ़ने के प्रति एक ललक हो ताकि उनके सामने साहित्य के नए-नए दरवाज़े खुलते जाएँ, और वे ललित साहित्य और गैर-साहित्यिक (non fiction) लेख के विपुल भण्डार से रूबरू होते जाएँ।"

समझकर पढ़ने की रणनीतियों (reading comprehension strategies) को सिखाने का मुख्य उद्देश्य यह है कि पाठकों को लिखित सामग्री के साथ ज़्यादा मुकम्मल तौर पर जुड़ने में मदद मिले और वह उनके लिए एक सोच-विचार से भरा अनुभव बन सके। स्टेफनी हार्वे और एने गुडविस ने 'स्ट्रेटेजीज़ दैट वर्क' नामक अपनी किताब में इस बात को बहुत सटीक ढंग से समझाया है:

"समझ से पढ़ने का मतलब केवल ये नहीं है कि बच्चे सिर्फ किसी पाठांश, कहानी या अध्याय के आखिर में दिए गए सवालों के जवाब देने की क्षमता हासिल कर लें। इसका आशय सोचने की एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया से होता है। जब पाठक बोल-बोल कर पढ़ी जा रही किसी लिखित सामग्री को पढ़ते या सुनते हैं, तो वे मन ही मन उसके साथ एक संवाद भी करते रहते हैं। उसे पढ़ते या सुनते हुए कहीं वे बहुत खुश होते हैं, कहीं हैरान होते हैं तो कहीं गुस्से वाली प्रतिक्रिया देते हैं। वे उस पर सवाल उठाते हैं, लेखक के साथ बहस करते हैं और बीच-बीच में सहमति जताने के लिए अपना सिर हिलाते हैं। जैसे पढ़ी जा रही कहानी को सुनते हुए वे उसके साथ अपना सम्बन्ध गढ़ते हैं, सवाल पूछते हैं और जो कुछ उन्हें पढ़ाया या सुनाया जा रहा है, उसको और बेहतर ढंग से और गहराई से समझने के लिए कुछ निष्कर्ष निकालते चलते हैं...।"

हार्वे और गुडविस आगे बताते हैं, "हम चाहते हैं कि हमारे विद्यार्थी

इस बात को समझने लगें कि पढ़ते समय उनकी सोच कितनी महत्वपूर्ण हो जाती है। अध्यापकों के नाते हमारा फर्ज़ है कि हम विद्यार्थियों को इस बात का यकीन दिलाएँ कि उनकी सोच, उनके विचार और उनकी व्याख्याएँ भी मायने रखती हैं। जब वे पढ़ने वाले किसी पाठ या कहानी से जुड़ते हैं और अपने भीतर होने वाली उस बातचीत को गौर से सुनते हैं तो उनकी समझदारी में इज़ाफा होता है, उनका ज्ञान पुष्ट होता है, उनके पास एक अन्तर्दृष्टि विकसित होती है।"

प्री-स्कूल उम्र के बहुत छोटे बच्चों के लिए भी कहानियाँ सुनना और किताबों को देखना और पढ़ना, उनके लिए समझने की एक सक्रिय प्रक्रिया बन सकती है। इन छोटे-छोटे बच्चों को भी गौर से सुनने के तरीके सिखाए जा सकते हैं। उन्हें जो कुछ सुनाया जा रहा है उसे अपने जीवन से जोड़ने के मौके देकर और उसकी व्याख्या करने से, बच्चों को लिखित सामग्री के साथ समझ से जुड़ने के तरीके सिखाए जा सकते हैं। पढ़ने और बोल-बोल कर पढ़ने के सत्रों में सवाल पूछना, अन्दाज़ लगाना और इसी प्रकार की अन्य सामाजिक अन्तर्क्रियाएँ बच्चों में समझने की क्षमता को बढ़ाती हैं। मिसाल के तौर पर, किताबें पढ़कर सुनाने वाले वयस्क इन छोटे बच्चों के साथ किताब से जुड़ी बातचीत करके उन्हें उसके बारे में सोचने, उस पर सवाल उठाने और उसके साथ अपने

जीवन के अनुभवों को जोड़ने के मौके देते हैं।

समझ हासिल करने की कुछ आधारशिलाएँ

1. अवधारणात्मक ज्ञान

बच्चों को उन शीर्षकों के साथ एक जान-पहचान की ज़रूरत पड़ती है जिनको वे पढ़ रहे हैं। उन्हें उस वृत्तान्त और व्याख्यात्मक पाठ में आई मुख्य अवधारणाओं की कुछ बुनियादी समझदारी की भी ज़रूरत होती है। मिसाल के तौर पर, प्री-स्कूल या कक्षा-एक की उम्र के छोटे-छोटे बच्चे, जो उन विचारों को समझते हैं जिनके बारे में उन्होंने पढ़ा है या जिनके बारे में उन्होंने चित्र-पुस्तक के आधार पर जाना है, वे साल-दो-साल के भीतर पढ़कर समझने की अच्छी क्षमता हासिल कर लेते हैं (पेरिस एवं पेरिस)।

अगर विद्यार्थियों के पास प्रिंट या ऐसी विषयवस्तु के साथ पहले से कोई अनुभव या अवधारणात्मक ज्ञान नहीं है जिसको वे पढ़ने वाले हैं तो ज़रूरी है कि पढ़ने से पहले ही उन्हें

यह ज्ञान मिल जाए ताकि उनके लिए पढ़ना एक सार्थक गतिविधि बन सके और वे जो कुछ पढें, उसको समझने में सक्षम हों। अवधारणात्मक ज्ञान को दुनिया का ज्ञान भी कहते हैं। शोधों से पता चला है कि जिन बच्चों के पास दुनिया का ज्ञान कम होता है, वे पढ़ने की क्षमता में भी अपेक्षाकृत कमज़ोर होते हैं।

2. भाषा कौशल

देखने में आया है कि पढ़ने की क्षमता पर बच्चों के मौखिक भाषा कौशल से भी असर पड़ता है। इसमें अपने आपको व्यक्त कर पाने के लिए और सुनने के लिए भाषा के इस्तेमाल की क्षमता शामिल है। उदाहरण के लिए, जिन बच्चों के पास ज़्यादा बड़ा शब्द-भण्डार होता है और जो अपने विचारों, सोच और भावनाओं को व्यक्त करने के लिए लिखने और बोलने में बहुत सारे शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, और जो लिखी हुई सामग्री में भी बहुत सारे शब्दों को समझने में सक्षम होते हैं, उनके पास समझते हुए पढ़ने की ज़्यादा बेहतर क्षमता होती है (डिकिन्सन एवं टेबॉर्स)।

3. तेज़ी से शब्दों को पहचानना (डीकोडिंग की कुशल दक्षताएँ)

किसी पाठ को समझने में शब्दों को पहचानने का कौशल बहुत मायने रखता है। शोधों से यह बात साफ हो चुकी है कि जो विद्यार्थी शब्दों को नहीं पढ़ सकते, वे उस पाठ को नहीं समझ सकते। वे शब्दों को पढ़ पाएँ, इससे पहले ज़रूरी है कि वे अलग-अलग अक्षरों और उनकी ध्वनियों से वाकिफ हों ताकि शब्दों को कहने के लिए वे अलग-अलग आवाज़ों को बोलने और उनको एक-दूसरे से जोड़ने में सक्षम हो सकें।

जब कोई शब्द बोला जाता है तो अच्छे पाठक इस बात को फौरन समझ लेते हैं कि उस वाक्य और पाठ के सन्दर्भ में उस शब्द का क्या अर्थ बन रहा है। अगर उन्हें लगता है कि यह शब्द यहाँ उपयुक्त नहीं है तो वे उस शब्द को फिर से देखकर यह जाँचने की कोशिश करते हैं कि उन्होंने गलत तो नहीं पढ़ लिया है। पढ़ना सिखाने वाले शिक्षक बच्चों के शब्द पहचान कौशल को विकसित करने पर ज़बर्दस्त ध्यान देते रहे हैं क्योंकि वे जानते हैं कि समझ कर पढ़ने वाले पाठक तैयार करने के लिए इस तरह का कौशल कितना महत्व रखता है (प्रेसली)।

कुशलतापूर्वक पढ़ने की एक सबसे गौर करने वाली खासियत यह है कि वे शब्दों को प्रवाह के साथ पढ़ सकते हैं। कहने का मतलब यह है कि उनके लिए शब्दों को उच्चारित करना एक स्वतःस्फूर्त प्रक्रिया बन जाती है। उन्हें शब्दों को बोलने के लिए अतिरिक्त ध्यान नहीं देना पड़ता। यह बहुत महत्वपूर्ण बात है क्योंकि पढ़ना यानी शब्दों का अर्थ बूझना और पाठ को समझना, दोनों ही हमारी अल्पकालिक स्मृति पर निर्भर होते हैं और यह

अल्पकालिक स्मृति बहुत थोड़ी होती है। एक सामान्य पाठक एक बार में लगभग 7 जानकारियों को ही ज़हन में रख पाता है। ऐसे में अगर विद्यार्थी शब्दों को पहचानने में तेज़ नहीं होगा, या वह अभी भी शब्दों का बोल-बोल कर अभ्यास कर रहा है तो उसकी अल्पकालिक स्मृति का एक बड़ा हिस्सा शब्दों के अर्थ समझने में ही ज़ाया हो जाएगा। जो पाठक शब्दों को प्रवाहपूर्वक नहीं पढ़ पाते, वे अलग-अलग अक्षरों और उनके मेल से बनी आवाज़ों में ही उलझ कर रह जाते हैं। अगर ऐसा होता है तो उनके पास न तो अलग-अलग शब्दों को पहचानने के लिए और न ही वाक्यों, पैराग्राफों या पूरे पाठ को समझने के लिए बहुत क्षमता बचेगी। इसके विपरीत, जब प्रवाहपूर्वक पढ़ने वाला पाठक शब्दों को पहचानने पर बहुत कम ऊर्जा खर्च करता है तो उसकी ज़्यादातर क्षमता उस पाठ को समझने के लिए बची रह जाती है (प्रेसले)।

इसका मतलब है कि शब्दों को पहचानने का कौशल और प्रवाह विकसित करना किसी भी पाठ को समझने की पहली ज़रूरत है। बच्चों को बहुत सारे वास्तविक पठन में सक्रिय और सार्थक रूप से जुड़ने का मौका देना चाहिए और उन्हें अक्षर और शब्दों में बदलाव के भी मौके मिलने चाहिए जिससे उन्हें सक्रिय और प्रवाही ढंग से शब्दों के अर्थ ढूँढ़ने की सामर्थ्य मिलती है। लिहाज़ा, कम उम्र के पाठकों में समझने के साथ-साथ प्रवाह विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि उन्हें तरह-तरह के पाठ पढ़ने के लिए खूब सारा समय दिया जाए।

4. पाठ की विशेषताओं को पहचानना

शुरुआती पाठकों को यह जानने की ज़रूरत होती है कि किसी पाठ के शीर्षक, उसमें दी गई तस्वीरों, चित्र सम्बन्धी विवरणों, उपशीर्षकों, मोटे शब्दों और मुख्य शब्दों आदि का उस पाठ के अर्थ से क्या सम्बन्ध होता है। उन्हें प्रिंट, अलग-अलग लेखन विधाओं और पाठ संरचनाओं की अवधारणा विकसित करने में मदद दी जानी चाहिए। इससे उन्हें अलग-अलग किस्म के पाठों का अर्थ गढ़ने में मदद मिलेगी (ड्यूक)। कहानियों जैसे विवरणात्मक पाठों के मामले में कहानी की संरचनाओं से अवगत कराने से भी उन्हें अच्छी तरह पढ़ने में और उस कहानी को वापस सुना पाने में काफी मदद मिलती है।

(...जारी)

कीर्ति जयरामः ऑर्गेनाइज़ेशन फॉर अर्ली लिट्रेसी प्रमोशन (ओईएलपी) की सचिव और अर्ली लिट्रेसी प्रोजेक्ट (ईएलपी) की डायरेक्टर हैं। प्राथमिक शिक्षा और प्रारम्भिक साक्षरता के क्षेत्र में शिक्षक, शिक्षक प्रशिक्षक के रूप में काफी लम्बा अनुभव है।

अँग्रेज़ी से अनुवादः योगेन्द्र दत्त।

सभी चित्रः कनक शशिः एकलव्य, भोपाल की डिज़ाइनिंग टीम से सम्बद्ध हैं।

पिटारा कार्ट

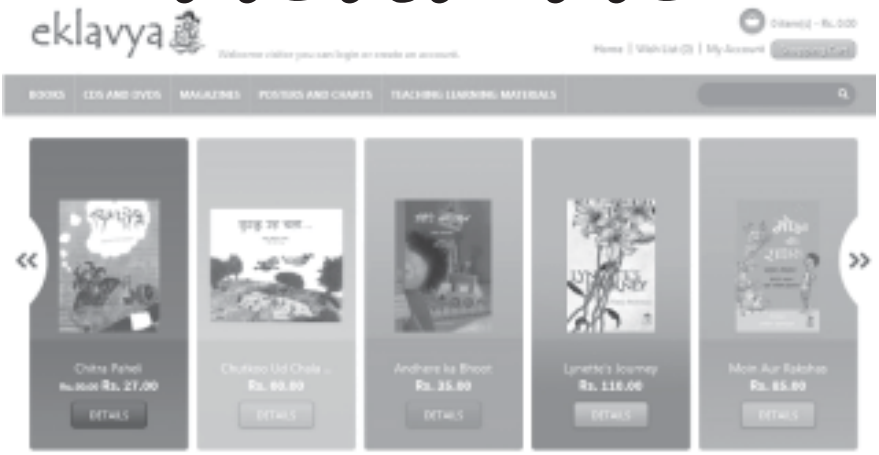

सिंगल क्लिक और आसान सर्च

एकलव्य की किताबें, पत्रिकाएँ, टी.एल.एम.,
शैक्षणिक सी.डी., चार्ट, पोस्टर एवं साइंस किट...
आपकी पहुँच में...

जल्द ही देश भर की संस्थाओं और प्रकाशकों की चुनिन्दा सामग्री भी

www.eklavya.in/pitara पर विज़िट कीजिए।
अपना अकाउंट बनाइए।
आसान खरीदारी और सुरक्षित भुगतान

विशेष ऑफर

31 अगस्त 2014 तक की गई ऑनलाइन खरीदी पर 100 रुपए की विशेष छूट।

एकलव्य
www.eklavya.in

शिक्षकों की कलम से

इस अंक से हम एक नया कॉलम शुरू कर रहे हैं जिसके माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। इस बार तीन लेख एवं अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए और अपने अनुभवों को भी लिखकर औरों से बाँटने के लिए हमें ज़रूर भेजिए।

1. नन्ही तितली को उड़ना कौन सिखाता है?..... रेखा चमोली
2. खेल-खेल में व्याकरण ..... श्रीदेवी वेंकट
3. बोरगाँव का भीमा ..... मुकेश मालवीय

नन्ही तितली को उड़ना कौन सिखाता है?

रेखा चमोली

एक घने कस्बे में ऐसी जगह जहाँ मकान एवं तंग गलियाँ हों, हमारे लिए प्रकृति से निकटता एक छोटी-सी फूलों की क्यारी है। इसी क्यारी में हमने चाँदनी रात में मकड़ी को जाला बुनते देखा, चींटियों को अखरोट का चूरा बिल में ले जाते देखा। हमने अपनी उस छोटी-सी क्यारी में कई तरह के बीजों को अंकुरित होते व बढ़ते देखा पर इन सबमें सबसे रोमांचित करने वाला अनुभव रहा इल्ली को तितली बनते देखना।

मई 2012 में एक छुट्टी वाले दिन एक नन्ही इल्ली दरवाज़े पर रेंगते दिखी, शायद क्यारी से घूमती इस ओर आ निकली हो। जब बच्चों को बताया कि यह इल्ली है और बाद में तितली बनेगी तो वे बेहद खुश हुए। बच्चों ने अपनी किताब में दी गई जानकारी के आधार पर उसे पहचाना और इल्ली को पालने की इच्छा ज़ाहिर की। मैंने भी इससे पहले इल्ली किताबों में ही देखी थी और उसकी सही-सही पहचान मुझे भी न थी। फिर भी इल्ली पालने के विचार ने मुझे भी रोमांचित कर दिया। हमने प्लास्टिक के एक पारदर्शी खुले मुँह वाले डिब्बे में इल्ली को रख दिया। वह बाहर न निकले इसके लिए एक सूती रुमाल डिब्बे के मुँह पर बाँध दिया।

इल्ली आखिर खाती क्या होगी, यह हमारे लिए

इल्ली से बना प्यूपा

चिन्ता का विषय था। चूँकि वो हमारी फूलों की क्यारी से निकली थी तो अनुमान के आधार पर तीन-चार ताज़ी पत्तियाँ इल्ली को खाने को दीं। बाद में हमें इल्ली की पसन्द का पता चल गया और हमने उसे सिर्फ डहेलिया की पत्तियाँ ही देने का इन्तज़ाम किया। बच्चे सुबह-शाम उसे साफ धुली पत्तियाँ खिलाते, डिब्बा साफ करते और उसे बढ़ते देख खुश होते। उन्होंने अपने दोस्तों को भी बुला-बुला कर इल्ली दिखाना शुरू कर दिया।

हर शाम बच्चे आते, इल्ली को बढ़ता देखते और अपने जिज्ञासा भरे सवालों की झड़ी लगा देते। अचानक हमने महसूस किया कि इल्ली ने हिलना-डुलना, खाना बन्द कर दिया है। बच्चे उदास हो गए। बच्चों ने डिब्बे को धूप में रखा। फिर हमने देखा कि हरी इल्ली भूरे रंग के प्यूपा में बदल गई। तब जाकर राहत मिली। मैंने बच्चों को बताया कि कुछ दिनों में यह प्यूपा तितली में बदल जाएगा। इसके अन्दर तितली बन रही है। फिर से नए सवाल उठ खड़े हुए।

इस दौरान इंटरनेट से तितलियों के बारे में जानकारी हासिल करने की भी कोशिश की पर वो नाकाफी रही। हम इन्तज़ार करते रहे। प्यूपा को हाथ में लेकर देखते रहे। धीरे-धीरे हमने महसूस किया कि उसके गहरे पारदर्शी खोल के भीतर रंग बदल रहा है। कुछ छोटी बिन्दु जैसी गोल संरचनाएँ दिख रही हैं। ग्यारह दिन के इन्तज़ार के बाद एक सुबह जब हम उठे तो देखा एक नन्ही तितली जैसे हमारा इन्तज़ार ही कर रही थी। हम सब रोमांच से भर उठे। तितली इस विशाल संसार में घूमने को आतुर थी। हमने डिब्बे के मुँह पर ढका रुमाल हटा दिया। उस नन्ही तितली ने एक पल की भी देर न की। बाहर निकल वह एक-दो मिनट क्यारी में घूमी, फिर निकल पड़ी दुनिया घूमने।

उसके बाद से आलम यह है कि बच्चे उस जैसी किसी भी तितली को देखकर पूछते रहते हैं, "माँ यह हमारी तितली है क्या?" इस पूरी प्रक्रिया को देख बच्चे आश्चर्यचकित थे। तितली ने अपने आप उड़ना कैसे सीखा? बिना किसी की मदद के वो इतनी बड़ी दुनिया में अकेले घूमने कैसे चली गई? उनके ढेरों सवाल थे जिनमें से बहुत सारे सवालों के जवाब मेरे पास भी नहीं थे।

इस शानदार अनुभव के बाद मैं अक्सर ही क्यारी में इल्ली खोजती हूँ। अपने स्कूल के आसपास के पौधों में इल्ली खोजी पर नहीं मिली। अगले

जब पहली बार हमने इल्ली पाली तो उस समय उठे बच्चों के सवालः

- क्या सच में इस इल्ली से तितली बनेगी?
- यह इल्ली कहाँ से आई?
- क्या इसकी माँ इसे ढूँढ़ नहीं रही होगी?
- क्या हम इसका घर ढूँढ़कर इसे वापस रख सकते हैं? अगर इसकी माँ इसे ढूँढ़ते हुए यहाँ आ गई तो हम इसे वापस दे देंगे?
- कैटरपिलर इतनी सारी पत्तियाँ खा रहा है, इसे इतनी भूख क्यों लगती है?
- क्या इसके मुँह में भी दाँत होंगे?
- इल्ली के इतने सारे पैर क्यों होते हैं?
- अगर ये इल्ली क्यारी में ही होती तो कहाँ-कहाँ घूमती? क्या तब इसकी माँ इसे देखती? इसकी देखभाल करती?
- इसके अन्य भाई-बहन भी तो होंगे, यह क्या उनके साथ खेलती? उनसे बातें करती?
- इसको डिब्बे के अन्दर कैसा लग रहा होगा? क्या ये भी हमें देख रही है? हमारी बातें सुन रही है?

जब इल्ली ने हिलना-डुलना बन्द कर दिया तब उठे सवालः

- यह इधर-उधर क्यों नहीं जा रही?
- इसे चोट तो नहीं लगी?
- तबियत खराब है क्या?
- अगर यह बीमार हुई तो हमें कैसे पता चलेगा?
- हम इसे किस डॉक्टर के पास ले जाएँगे? इसको दवाई कैसे देंगे?
- अगर यह क्यारी में होती तो क्या खुद कोई दवाई खा लेती?

साल फिर अप्रैल की सुबह हमें एक इल्ली मिली। हमने उसे पाला। इस बार भी बच्चों ने इल्ली की खूब देखभाल की और नियत समय पर एक सुन्दर तितली को पाया। इस बार प्यूपा का तितली में तब्दील होना शाम को हुआ। शाम को 6 बजे के लगभग हमें यह पता चला। हमने तितली को क्यारी में छोड़ा तो वह एक चक्कर क्यारी में घूमी और फिर एक पौधे से दूसरे पर बैठती रही। हम थोड़ी देर इन्तज़ार करते रहे पर वह उड़ी नहीं। रात हो

जब इल्ली प्यूपा में बदली

बच्चों को बहुत आश्चर्य हुआ जबकि वे अपनी किताब में पढ़ चुके थे कि ऐसा होता है। अपने सामने ऐसा होता देख वे सुखद आश्चर्य से भर उठे। जब गौरांशी ने कहा कि मेरी समझ में नहीं आ रहा कि इतनी बड़ी इल्ली, इतने छोटे-से प्यूपा में कैसे बदल गई तो अक्षत बोला, "तुझे इतना भी नहीं पता, यह ऐसे बैठी है पाँव सिकोड़कर (सिर घुटनों में देकर) और उसने अपने चारों ओर कवर बनाकर खुद को छिपा लिया।"

जब प्यूपा तितली में बदला तोः

- ये प्यूपा तितली कैसे बना होगा?
- इतनी बड़ी तितली इतने छोटे प्यूपा में कहाँ से आई?
- तितली के पंख कैसे बने होंगे?
- तितली को उड़ना किसने सिखाया? उसके पास तो कोई नहीं था।
- इसके पंखों में कलर कौन करता है?
- क्या भगवान ने इसे उड़ना सिखाया?

गई, हमने सोचा शायद रात होने की वजह से नहीं उड़ रही हो। सुबह हुई तो देखा वह वहीं बैठी है। हमें चिन्ता होने लगी। बाहर बारिश हो रही थी, वह वहीं बैठी रही। अगले दिन बच्चों की छुट्टी थी। मैं स्कूल चली गई थी। स्कूल से बच्चों को फोन लगाया तो पता चला कि तितली वहीं बैठी है। वह भीग न जाए इसलिए बच्चों ने उस पर फूलों से छाता बना दिया था। जब मैं स्कूल से वापस आई तो तितली को वहीं बैठा पाया। हम सब परेशान थे। क्या हो गया? कहीं तितली को चोट तो नहीं लगी या फिर वह बीमार तो नहीं है?

इन्हीं आशंकाओं के साथ मैंने उसके सामने हाथ बढ़ाया। वह उँगली पर आकर बैठ गई फिर उड़कर दूसरे पौधे पर चली गई। शुक्र है, वह उड़ तो रही थी। दोपहर लगभग तीन बजे मौसम खुला। धूप निकली। मेरी बेटी ने तितली को हाथ में लिया। अबकी बार तितली ने दो-तीन चक्कर क्यारी के लगाए, छज्जे पर बैठी और फिर उड़ गई। ऐसा क्यों हुआ? क्या वह मौसम खुलने का इन्तज़ार कर रही थी?

पहली इल्ली और दूसरी इल्ली के तितली बनने की प्रक्रिया में हमने कई सारी समानताएँ देखीं पर जो अन्तर देखे वो इस तरह से थे।

पहली इल्ली हमारे पास चार दिन तक इल्ली रही, फिर ग्यारह दिन तक प्यूपा में बदलकर रात को तितली में बदली। प्यूपा भी रात में ही बना था। यह भूरे रंग का था। जबकि दूसरी इल्ली 6 दिन इल्ली रही फिर 9 दिन हरे रंग के प्यूपा में रही। दोनों ही तितलियों के प्यूपा के आकार में अन्तर

इल्ली से तितली बनने तक का सफर हुआ पूरा। अब बोतल से बाहर उड़ान की तैयारी।

था। शायद ऐसा अलग-अलग प्रजातियों की तितलियों की वजह से हुआ, क्योंकि बाद वाली तितली पहली तितली से बड़ी थी और दिन में तितली बनी थी।

इल्ली अपना कोकून कहाँ और कैसे बनाती है? तितली बिना किसी की मदद के उड़ना कैसे सीख लेती है? इन सारे सवालों को लेकर अक्षत कई दिनों तक सोचता रहा फिर एक दिन मेरे पास आकर बोला, "जैसे आप हमारे लिए कोई मैसेज छोड़ देती हैं वैसे ही तितली भी अण्डे देते समय अपने बच्चों के लिए मैसेज छोड़ देती होगी। जब इल्ली अण्डे से निकलती है तो वह अपनी माँ का छोड़ा मैसेज पढ़ती है। उसे पता चल जाता है कि उसे क्या करना है। क्या नहीं करना। किससे दूर रहना है। प्यूपा कैसे बनाना है। और किस तरह उड़ जाना है।"

जितने दिन हमारे घर में इल्ली रही वह डिब्बा बच्चों के साथ उनके बिस्तर पर ही रहता था। ये छोटी-सी इल्ली अपने साथ उमंग, उत्साह लेकर आई, कुछ सिखा भी गई। उसकी वजह से हम सब चहके-चहके रहते थे। उसका जाना भी हमारा एक उड़ान में शामिल होना था।

रेखा चमोली: उत्तराखण्ड में राजकीय प्राथमिक विद्यालय में शिक्षिका हैं। साहित्य में रुचि। कविताएँ भी लिखती हैं।

सभी फोटो: रेखा चमोली।

शिक्षकों की कलम से

इस अंक से हम एक नया कॉलम शुरू कर रहे हैं जिसके माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। इस बार तीन लेख एवं अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए और अपने अनुभवों को भी लिखकर औरों से बाँटने के लिए हमें ज़रूर भेजिए।

1. नन्ही तितली को उड़ना कौन सिखाता है?..... रेखा चमोली
2. खेल-खेल में व्याकरण ..... श्रीदेवी वेंकट
3. बोरगाँव का भीमा ..... मुकेश मालवीय

खेल-खेल में व्याकरण

श्रीदेवी वेंकट

विगत दिनों प्राथमिक शाला छाती ज़िला धमतरी, की शिक्षिका छाया दुबे जी से मिलना हुआ। वे कक्षा पाँच में भाषा शिक्षण का काम करती हैं। कक्षा में जाने से पहले, कक्षा अवलोकन के सम्बन्ध में मेरी उनसे बातचीत हुई। मेरा उनसे अनुरोध था कि मैं कक्षा में बच्चों के साथ बैठूँगी और वे बच्चों के साथ वही काम करें जो उन्होंने आज के लिए सोचा है। कक्षा में 17 बालिकाएँ और 14 बालक थे। बालक और बालिकाएँ अलग-अलग कतारों में बैठे हुए थे। कक्षा-कक्ष हवादार और रंग-बिरंगा था।

इसके एक दिन पहले ही शिक्षिका ने कक्षा पाँच में 'राष्ट्र प्रहरी' नामक पाठ पढ़ाया था। आज शिक्षिका ने बच्चों से उसके सन्दर्भ में बातचीत की और पाठ से सम्बन्धित प्रश्न पूछे। जैसेः

- अक्षय दूरदर्शन पर क्या देख रहा था?
- हमारे गाँव में 26 जनवरी के दिन क्या होता है?

इन प्रश्नों पर बच्चों की प्रतिक्रियाओं के बाद शिक्षिका ने बच्चों से कहा कि वे पाठ को फिर से देखें और उसमें से ऐसे शब्द जिनके अन्त में 'ता' वर्ण का उपयोग हुआ उन्हें छाँटें।

बच्चों ने तुरन्त शब्दों को खोजना शुरू कर दिया और जब उस पाठ में इस तरह के शब्द खत्म हो गए तो चयनित शब्दों की तरह के अन्य शब्द जो उनको याद थे उन्हें भी बताने लगे। जैसेः अनुशासनप्रियता, सहायता, सरलता, सहृदयता, कठोरता, निर्मलता, कोमलता, विजेता, सुन्दरता। ये सारे शब्द बच्चों ने पाठ से ही निकाले थे।

बच्चों ने इन शब्दों के बाद ऐसे नाम एवं क्रिया शब्द भी बतलाए जिनके अन्त में 'ता' वर्ण का उपयोग होता है। और ये सभी उनके मन से आए शब्द थे। जैसेः सीता, गीता, नम्रता, अनीता, सुनीता, बबीता, सोता, जाता, गाता, खाता, पीता, खेलता, पढ़ता आदि।

यह सुनते हुए शिक्षिका को अपने शुरुआती निर्देश की सीमा समझ में आई। उन्होंने निर्देश को दोहराया नहीं बल्कि वे सभी शब्द जो बच्चे बता रहे

थे, उन्हें श्यामपट्ट पर लिख दिया और इन शब्दों को वर्गीकृत करने के लिए श्यामपट्ट पर एक सारणी बनाई जो कुछ इस प्रकार थीः काम, नाम, जो काम और नाम नहीं हैं।

इस बार शिक्षिका ने बच्चों से कहा कि जो शब्द श्यामपट्ट पर लिखे हैं उन्हें इस सारणी में छाँटकर लिखें।

बच्चों ने श्यामपट्ट पर लिखे शब्दों को निम्न प्रकार से जमायाः

कामः

सोता, गाता, खाता, पीता, मारता, बोलता, खेलता, पढ़ता।

नामः

सीता, गीता, अनीता, सुनीता, बबीता, नम्रता, नीता।

जो काम और नाम नहीं हैंः

अनुशासनप्रियता, सहायता, सरलता, सहृदयता, कठोरता, निर्मलता, कोमलता, विजेता, नम्रता, सुन्दरता।

इस प्रकार शब्दों के वर्गीकरण के बाद शिक्षिका ने बच्चों से बात करते हुए उनसे कुछ नियम निकलवाए।

शिक्षिका ने बच्चों को निर्देश दियाः इन शब्दों में जो काम और नाम वाले शब्द हैं उनका प्रयोग करते हुए कुछ वाक्य बनाइए।

बच्चों ने श्यामपट्ट पर लिखाः

- राम सोता है ।
- अनीता गाना गाती है।
- खिलावन पढ़ता है।
- किशन खाना खाता है।
- नम्रता खाना खाती है।

शिक्षिका ने अपनी तरफ से भी कुछ वाक्य जोड़ेः

- भारतीय सैनिक अपनी अनुशासन प्रियता के लिए जाने जाते हैं। (पाठ से)
- सीता पढ़ने में बबीता की सहायता करती है।

तत्पश्चात् श्यामपट्ट पर लिखे इन सभी वाक्यों पर शिक्षिका ने बच्चों से बातचीत की।

शिक्षिकाः इन वाक्यों में जितने भी काम, नाम और इनके अलावा भी जो शब्द आए हैं, उनका उपयोग वाक्य में किस जगह पर हुआ है? इसे हम सब मिलकर खोजते हैं। इन सब वाक्यों में सबसे पहले क्या आया है?

बच्चेः नाम।

एक और बच्चाः पर एक वाक्य में दो नाम अलग-अलग जगह पर आए हैं।

शिक्षिकाः तो, इस वाक्य से और क्या पता चल रहा है?

बच्चेः सीता पढ़ा रही है और बबीता पढ़ रही है।

शिक्षिकाः एक वाक्य में हम दो लोगों के अलग-अलग कामों को बता रहे हैं, इसलिए इस वाक्य में दो नाम अलग-अलग जगहों पर आए हैं। इन सब वाक्यों में नाम के बाद क्या आया है?

बच्चेः सोता, गाना गाती, पढ़ता, खाना खाता, खाना खाती।

शिक्षिकाः शब्द किस बारे में बतलाते हैं?

बच्चे: हम जो काम करते हैं उनको बतला रहे हैं। वाक्य में सबसे पहले व्यक्ति का नाम आता है। उसके बाद उसके द्वारा किया गया काम। उसके उस काम के लिए 'खाना खाते हैं', 'गाना गाते हैं' आदि लिखते हैं।

अब शिक्षिका ने बच्चों का ध्यान पाठ से लिखे वाक्य पर केन्द्रित किया।

शिक्षिका: 'भारतीय सैनिक अपनी अनुशासनप्रियता के लिए जाने जाते हैं।' इस वाक्य में किसके बारे में बताया गया है?

बच्चे: भारतीय सैनिकों की अनुशासनप्रियता के बारे में।

शिक्षिका: अनुशासनप्रियता क्या है?

सारे बच्चे चुप।

शिक्षिका: सीता पढ़ने में बबीता की सहायता करती है। इस वाक्य में 'सहायता' क्या है?

बच्चे पहले की तरह चुप।

शिक्षिका: ये शब्द गुण हैं। (श्यामपट्ट के शब्दों को दिखाकर) तो ऐसे शब्द जो नाम और काम दोनों में नहीं हैं, वो क्या हैं?

बच्चे: गुण हैं।

एक बच्चा: क्या 'विजेता' भी गुण है?

शिक्षिका: बताओ विजेता कौन होता है? हम विजेता किसे कहते हैं?

बच्चे: वह जो जीत जाता है।

शिक्षिका: तो हम किन चीज़ों को जीतते हैं?

बच्चे: लड़ाई, खेल, कंचे, कबड्डी, खो-खो।

शिक्षिका: लड़ाई और खेल में जीतना कब होता है?

बच्चे: आखिरी में।

अब तक कक्षा में जो काम हुआ, शिक्षिका ने बच्चों से पुनः बात करते हुए उसे श्यामपट्ट पर लिखने की कोशिश की।

शिक्षिका: किसी वाक्य में क्या-क्या होता है?

- नाम (जो करने वाला होता है)
- काम (जो वह कर रहा होता है)
- किसी काम का होना।

हालाँकि सभी वाक्यों में कोई काम हो, यह ज़रूरी नहीं है। एक वाक्य में दो अलग-अलग कार्यों को भी बताया जा सकता है।

शिक्षिका: कल जब घर से आना तो पाँच-पाँच वाक्य लिखकर लाना। हम इसके बारे में बाकी बातचीत अगली कक्षा में करेंगे।

ऐसा कहकर उन्होंने अपनी कक्षा को समाप्त किया।

***

इस कक्षा में जो अहम और नया रहा, वह कुछ इस प्रकार है:

- आम तौर पर भाषा की कक्षा में जो व्याकरण शिक्षण होता है, इस कक्षा में उससे कुछ अलग तरह से काम हुआ।

- वास्तव में शिक्षिका बच्चों को गुण-वाचक संज्ञा बताना चाहती थीं, जिस पर कक्षा में ज़्यादा काम नहीं हो पाया। शिक्षिका ने बच्चों की समझ और प्रयास का सम्मान करते हुए एक अन्य व्याकरणीय पहलू को उसी खूबसूरती के साथ बच्चों के साथ साझा किया।
- इस पूरी शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षिका ने एक बार भी बच्चों के बीच कर्त्ता, कर्म और क्रिया जैसे पारिभाषिक शब्दों का उपयोग नहीं किया। पाठ में से ही कुछ विशेष प्रकार के शब्द बच्चों से निकलवाए, फिर उनका वर्गीकरण कराया। वाक्य संरचना के बारे में लगभग सारी बातचीत बच्चों से ही निकलवाई। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए कुछ वाक्यों को बच्चों के बीच रखा, उन पर कुछ बातचीत की और बच्चों ने अपने नियम खुद निकाले।
- कक्षा में हुई इस बातचीत ने बच्चों को खुद के ज्ञान पर विश्वास करने की ओर प्रेरित किया।
- इस कक्षा में शिक्षिका जब बच्चों के सभी शब्दों को श्यामपट्ट पर लिखने लगीं तो लगभग सभी बच्चों ने अपने-अपने शब्द लिखवाए। इस प्रक्रिया में उन बच्चों ने भी भाग लिया जो थोड़ी देर पहले तक चुप बैठे थे।
- भाषा शिक्षण की इस प्रक्रिया में शिक्षिका को बच्चों के भाषाई ज्ञान और कौशल पर पूरा विश्वास था।
- कक्षा तो हिन्दी की थी पर बच्चे कक्षा में आपसी बातचीत के दौरान छत्तीसगढ़ी का उपयोग कर रहे थे।

कक्षा से बाहर आने के बाद मैंने शिक्षिका से इस सन्दर्भ में बातचीत की और पूछा, "आपने बच्चों को पूरी वाक्य संरचना बता दी और पारिभाषिक शब्दों का उपयोग नहीं किया?" इस पर उनका कहना था, "इन शब्दों को बच्चे अभी जानते नहीं हैं। पहले उन शब्दों की अवधारणा पर बातचीत करें तो बच्चे किताब में पढ़ने पर पारिभाषिक शब्द और उनका अर्थ तो समझ ही जाएँगे। महत्वपूर्ण है संरचना को समझना।"

श्रीदेवी वेंकट: अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, धमतरी, छत्तीसगढ़ में कार्यरत।

शिक्षकों की कलम से

इस अंक से हम एक नया कॉलम शुरू कर रहे हैं जिसके माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। इस बार तीन लेख एवं अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए और अपने अनुभवों को भी लिखकर औरों से बाँटने के लिए हमें ज़रूर भेजिए।

1. नन्ही तितली को उड़ना कौन सिखाता है?..... रेखा चमोली
2. खेल-खेल में व्याकरण ..... श्रीदेवी वेंकट
3. बोरगाँव का भीमा ..... मुकेश मालवीय

बोरगाँव का भीमा

मुकेश मालवीय

सभी चित्रः सौम्या शुक्ला

बात तो बहुत पुरानी है पर कल अचानक सामने आ गई। मेरे स्कूल में एक खान मास्साब हैं। कल मैं और खान मास्साब अपने स्कूल में पीछे की तरफ खड़े हुए थे। स्कूल में पीछे एक खेत है। खेत में धान लगी हुई थी। धान की फसल को देखते-देखते खान मास्साब अचानक 'धान मास्साब, धान मास्साब' कहते हुए हँसने लगे।

मैंने पूछा, "क्या हुआ?"

वे बोले, "यह धान का खेत देखकर मुझे भीमा की याद आ गई। भीमा मुझे 'धान मास्साब, धान मास्साब' कहकर बुलाता था।"

मैंने पूछा, "कौन भीमा?"

खान मास्साब ने एक गहरी साँस ली और दूर कहीं खो गए। मैं उनका चेहरा देख रहा था। उन्होंने बताना शुरू किया, "बात उन दिनों की है जब मैं शिक्षक बनकर पहली बार स्कूल में पढ़ाने पहुँचा। वह एक गाँव का स्कूल था। गाँव का नाम था बोरगाँव। बोरगाँव तक कच्ची सड़क थी और शहर से एक बस दिन में यहाँ आती थी। बोरगाँव के स्कूल में आए मुझे अभी कुछ ही दिन हुए थे कि एक दिन स्कूल में एक युवक आया। वह ऊँचा पजामा और बण्डी पहना हुआ था। बण्डी में बीच में एक जेब थी जिसमें से एक मुड़ी हुई कॉपी झाँक रही थी। खाली रिफिलों का एक बण्डल भी जेब में था। उसके कान

में एक रिफिल फँसी हुई थी। पैर में चप्पल नहीं थी। उम्र कोई बीस-इक्कीस के करीब होगी। आँखें कंजी और छोटी-छोटी थीं पर भौंहें बड़ी-बड़ी। ललाट चौड़ा और चपटा था। गोरे रंग का मासूम मुस्कुराता हुआ चेहरा।"

खान मास्साब दूर देखते हुए इस तरह बयान कर रहे थे जैसे वह युवक उनके ठीक सामने खड़ा हो। मैं भी खान मास्साब के साथ उस घटना को देखने लगा। इसके बाद क्या हुआ यह मैं खान मास्साब के अपने शब्दों में ही बयान करूँगा।

***

स्कूल के एक शिक्षक से उस नौजवान ने इशारा करके कुछ माँगा।

"क्या चाहिए भीमा? लीड?" शिक्षक ने पूछा।

युवक का 'हाँ' में सिर हिला।

शिक्षक मेरी तरफ इशारा करके बोले, "ये नए मास्साब आए हैं अपने स्कूल में – खान मास्साब – इनसे माँगो।"

युवक ने कहा, "धान मास्साब, धान मास्साब।" फिर लिखने का इशारा करते हुए हाथ फैलाकर मेरी ओर कातरता से देखने लगा।

दूसरे शिक्षक हँसते हुए बोले, "धान मास्साब नहीं, खान मास्साब।"

पर उसने फिर 'धान मास्साब' कहा।

मैं नवयुवक के आकर्षण में तो था ही, मैंने अपने पेन की रिफिल निकाली और उसे दे दी। उसका पूरा शरीर उत्साह से भर गया। उसने फुर्ती से मुझसे रिफिल लेकर अपने दूसरे कान में खोंस ली और ताली बजाते हुए वहाँ से भाग गया।

मेरे साथी शिक्षक ने मुझे बताया कि इसका नाम भीमा है। उम्र में बड़ा है पर बच्चे जैसा दिमाग है। हर दो-चार दिन में स्कूल आता है, रिफिल माँगने।

"रिफिल का क्या करता है?" मैंने पूछा।

शिक्षक बोले, "तुमने देखा नहीं उसकी बण्डी की जेब में एक डायरी थी? भीमा रोज़ बस आने के पहले स्टैंड पर पहुँच जाता है। जब बस आती है तो बस-एजेन्ट (स्थानीय कंडक्टर) की तरह सवारी का नाम

अपनी डायरी में लिखने का प्रयोजन करता है। कई सालों से मैं उसे ऐसा करते देख रहा हूँ।"

अगले दिन मैं जब बस से बोरगाँव पहुँचा तो मुझे बस से उतरते देख भीमा खुशी से चिल्लाया, "धान मास्साब आ गया, धान मास्साब आ गया।"

मैं बस से उतरकर एक तरफ खड़ा हो गया और भीमा को देखने लगा। भीमा अब अपने काम में लगा हुआ था। वह जाने वालों को बस में चढ़ने का इशारा कर रहा था और अपनी कॉपी में कुछ-कुछ लिख रहा था। जब बस में सब लोग चढ़ गए तो भीमा बस में सामने के गेट से चढ़ा और सीट पर बैठी हुई सवारियों को देखते हुए पीछे के गेट से उतर गया। बस के कंडक्टर को भी भीमा पसन्द था। उसने ज़ोर-से आवाज़ लगाई, "भीमा, हो गया!" भीमा ने 'हाँ' में सिर हिलाया और बस हॉर्न बजाती हुई चली गई।

मैं हर सप्ताह सोमवार को इस बस से आता था और शनिवार को लौटता था। हर सप्ताह बोरगाँव पहुँचते ही मेरा सामना इसी खुशगवार आवाज़ से होता, "धान मास्साब आ गया, धान मास्साब आ गया।"

मैं एक खाली रिफिल अपने पास रखता और स्कूल में खाली समय में भीमा का इन्तज़ार करता। भीमा खाली रिफिल कभी फेंकता नहीं था। उसके पास तकरीबन 40-50 रिफिलों का एक बण्डल था जो उसकी बण्डी की जेब में रखा रहता।

भीमा मेरा दोस्त बन गया था। मुझे पता चला कि भीमा के माता-

पिता नहीं हैं। उसका एक बड़ा भाई है। पिता भीमा की बहुत फिक्र किया करते थे। उनके पास लगभग बीस एकड़ खेती थी जो उन्होंने दोनों लड़कों के नाम बराबर बाँट दी थी, यह सोचकर कि भीमा के नाम ज़मीन रहेगी तो बड़ा भाई उसकी फिक्र करेगा। पर अब बड़े भाई की शादी हो गई थी और धीरे-धीरे भीमा घर में अकेला होता जा रहा था। हालाँकि, भीमा ने कभी किसी से कोई शिकायत नहीं की थी। वह तो अपनी कॉपी बण्डी में रखे और कान में रिफिल खोंसे हमेशा मस्त घूमता रहता। उसे सिर्फ आधी खाली रिफिल की ज़रूरत पड़ती जो उसे 'धान मास्साब' से मिल ही जाती।

हर गाँव की तरह बोरगाँव के भी बड़े-बुज़ुर्गों को अपने गाँव के सभी लोगों की चिन्ता रहती थी। इसलिए उन्हें भीमा की चिन्ता भी हुई। चिन्ता जब ज़्यादा बढ़ गई तो एक दिन सबने मिलकर तय किया कि भीमा की शादी कर देनी चाहिए। भीमा के पास दस एकड़ ज़मीन भी है। कोई समझदार लड़की भीमा के साथ गुज़र-बसर कर ही लेगी।

कुछ दिनों बाद भीमा की खूब फिक्र करने वाली उसकी दुल्हन आ गई। पर समस्या तब खड़ी हुई जब शादी के पन्द्रह दिन बाद दुल्हन के मायके वाले दुल्हन को लेने आए। भीमा दुल्हन को ले जाने नहीं दे रहा था। उसने दुल्हन की पेटी छुपा दी और गुस्सा हो गया। सबने मनाया पर भीमा नहीं माना। उसने एक डण्डा हाथ में ले रखा था। तभी किसी को याद आया कि भीमा खान मास्साब की बात मानता है, खान मास्साब को बुलाओ।

मैं भीमा के घर पहुँचा। मुझे देखकर भीमा दौड़कर मेरे पास आया और रुआँसा होकर बोला, "धान मास्साब, ये ले जा रहे हैं उसको।"

फिर भीमा मुझसे लिपटकर सिसक-सिसककर रोने लगा।

आखिर में ऐसी स्थिती देख दुल्हन ने कहा, "मैं अपना घर छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी। मायके भी नहीं।"

दिन बीतते गए।

भीमा अब यहाँ-वहाँ नहीं घूमता। अपने घर और खेत पर रहता। पर बस के समय ज़रूर बस के पास आ जाता। और रिफिल लेने मेरे पास तो आता ही आता।

कुछ दिनों बाद मेरा तबादला बोरगाँव से देशावाड़ी हो गया। भीमा की याद बहुत आती रही, फिर धीरे-धीरे मैं उसे भूल गया। लगभग पाँच साल बाद मैं एक दिन किसी काम से चिचोली जा रहा था। बोरगाँव का रास्ता चिचोली के पास से जाता है। मैं अपनी मोटरसाइकल पर था। जहाँ से बोरगाँव के लिए रास्ता कटता है वहाँ पहुँचते-पहुँचते मैंने सोचा कि भीमा से मिले बगैर मैं यहाँ से कैसे आगे जा सकता हूँ। अपनी मोटर-साइकल बोरगाँव की तरफ मोड़ने से पहले मैंने अपने पेन की रिफिल

निकाली। रिफिल आधी थी। मैं कच्चे रास्ते पर बढ़ गया। बोरगाँव स्टैंड पर बस खड़ी थी। मैंने सोचा अच्छा है भीमा यहीं मिल जाएगा। मुझे देखते ही धान मास्साब, धान मास्साब कहेगा।

पर मुझे बस के आसपास कहीं भी भीमा दिखाई नहीं दिया। शायद अब भीमा ने बस पर आना छोड़ दिया होगा। खेती-बाड़ी के काम में लगा होगा।

मैं स्कूल चला गया, यह सोचकर कि पुराने मास्साब को लेकर भीमा से मिलने उसके घर जाऊँगा। पुराने मास्साब मिले। मैंने उनसे कहा, "पहले भीमा के यहाँ चलते हैं, उससे मिलकर फिर बाकी सारी बातें करेंगे।"

पुराने मास्साब बोले, "भीमा अब यहाँ नहीं रहता, तुम्हें नहीं पता?"

"कहाँ चला गया भीमा!!"

पुराने मास्साब बोले, "ईश्वर के यहाँ।"

मैं सकते में आ गया। पुराने मास्साब बोले, "एक साल हो गया। उस दिन भीमा बस के पिछले गेट से उतरा, तभी खाली रिफिल का बण्डल उसकी बण्डी की जेब से बाहर गिर गया। रिफिल का बण्डल बस के नीचे लुढ़क गया। भीमा बस के नीचे घुसा, तभी बस चल दी।"

इसके आगे मैं कुछ सुन नहीं सका। मैं इस गाँव में अब क्या करता। धान मास्साब, धान मास्साब कहने वाला मेरा दोस्त...

तभी मुझे जेब में रखी खाली रिफिल का ख्याल आया।

मैं खाली रिफिल के साथ वापस आ गया।

वह खाली रिफिल आज भी मेरे पास है और भीमा भी।

मुकेश मालवीयः शासकीय माध्यमिक शाला, पहावाड़ी (शाहपुर, बैतूल, म.प्र.) में शिक्षक हैं।

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

मासिक पत्रिका

स्रोत के ग्राहक बनें

एक प्रति **15** *रुपए*
व्यक्तिगत वार्षिक सदस्यता **150** *रुपए*
संस्थागत वार्षिक सदस्यता **300** *रुपए*

ज्ञान आधारित समाज के निर्माण का एक सशक्त संसाधन है 'स्रोत' पत्रिका

सदस्यता शुल्क एकलव्य, भोपाल के नाम ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से इस पते पर भेजें

ई-10, शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.) 462 016

फोन : (0755) 2550976, 2671017

ई-मेल : srotefeatures@gmail.com

Order your copies at: pitara@eklavya.in

कहानी

भाग-1

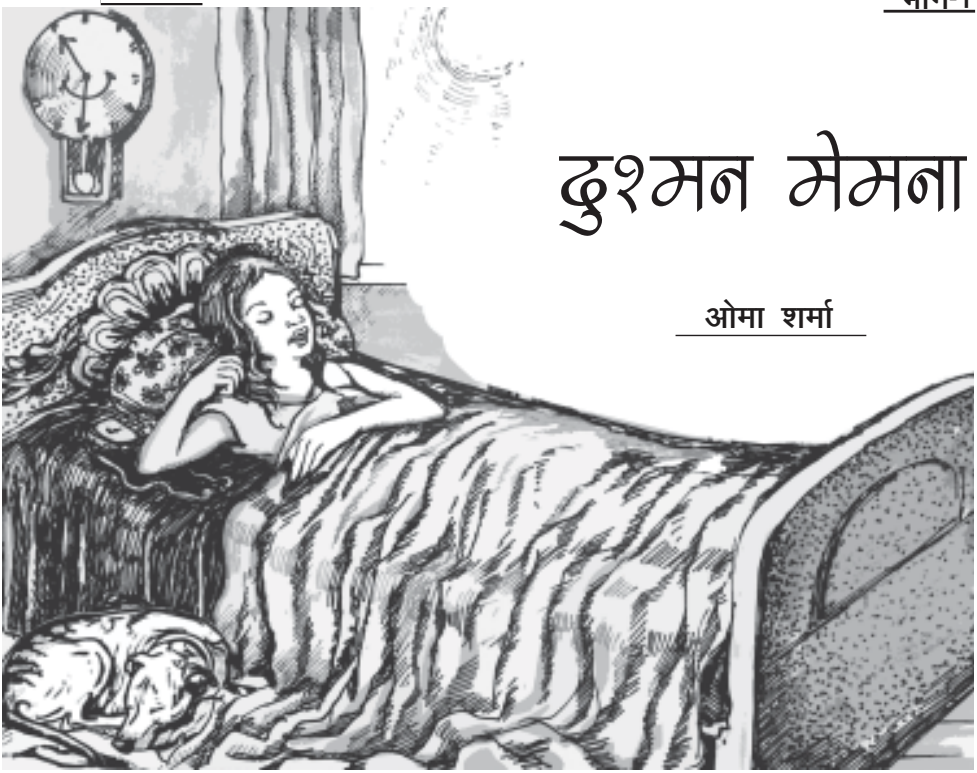

दुश्मन मेमना

ओमा शर्मा

वह पूरे इत्मीनान से सोयी पड़ी है। बगल में दबोचे सॉफ्ट तकिए पर सिर बेढंगा पड़ा है। आसमान की तरफ किए अधखुले मुँह से आगे वाले दाँतों की कतार झलक रही है। होंठ कुछ पपड़ा से गए हैं, साँस का कोई पता ठिकाना नहीं है। शरीर किसी खरगोश के बच्चे की तरह मासूमियत से निर्जीव पड़ा है। मुड़ी-तुड़ी चादर का दो-तिहाई हिस्सा बिस्तर से नीचे लटका पड़ा है। सुबह के साढ़े ग्यारह बज रहे हैं। हर छुट्टी के दिन की तरह वह यूँ सोयी पड़ी है जैसे उठना ही न हो। एक-दो बार मैंने दुलार से उसे ठेला भी है, "समीरा, बेटा समीरा, चलो उठो - ब्रेकफास्ट इज़ रेडी।" मगर उसके कानों पर जूँ नहीं रेंगी है। उसके मुड़े हुए घुटनों के दूसरी तरफ खुली त्रिकोणीय खाड़ी में किसी ठग की तरह अलसाए पड़े कास्पर (पग) ने ज़रूर आँखें खोली हैं मगर कुछ बेशर्मी उस पर भी चढ़ आई है। बिगाड़ा भी उसी का है।

वैसे वह सोती हुई ही अच्छी लगती है। उठ कर कुछ-न-कुछ ऐसा-वैसा ज़रूर करेगी जिससे अपना जी जलेगा।

नाश्ते में पराठे बने हों तो हबक देने की मुद्रा में यूँ 'ऑक' करेगी... कि नाश्ते में पराठे कौन खाता है। दलिया; नो। पोहा; मुझे अच्छा नहीं लगता। सैण्डविच; रोज़ वही। उपमा; कुछ और नहीं है। मैगी; ओके।

"मगर बेटा, रोज़ वही नूडल्स।"

"तो?"

"पेट खराब होता है।"

"मेरा होगा ना।"

"परेशानी तो हमें भी होगी।"

"आपको क्यों होगी?"

"कल आपको मायग्रेन हुआ था ना।"

"तो?"

"डॉक्टर ने मैदा, चॉकलेट, कॉफी के लिए मना किया है ना।"

"मैंने कॉफी कहाँ पी है?"

"नूडल्स तो मांग रही हो।"

"मम्मा!" वह चीखी।

"इसमें मम्मा क्या करेगी?"

"पापा, व्हाइ आर यू सो इरिटेटिंग?"

मैं इरिटेटिंग हूँ, यह बात अब मुझे परेशान नहीं करती है। नादान बच्चा है, उसकी बात का क्या। अकेला बच्चा है तो थोड़ा पैम्पर्ड है इसलिए और भी उसकी बातों का क्या।

वैसे उसकी बातें भी क्या खूब होती रही हैं। अभी तक।

हर चीज़ के बारे में जानना, हर बात के बारे में सवाल।

"पापा हमारी स्किन के नीचे क्या होता है?"

"खून।"

"उसके नीचे?"

"हड्डी।"

"हड्डी माने?"

"बोन।"

"और बोन के नीचे?"

"कुछ नहीं।"

"स्किन को हटा देंगे तो क्या हो जाएगा?"

"खून बहने लगेगा।"

"खून खत्म हो जाएगा तो क्या होगा?"

"आपको बोन दिख जाएगी।"

"उसको तो मैं खा जाऊँगी।"

"क्यों?"

"कास्पर भी तो खाता है।"

"वो तो डॉग है।"

"पापा, वो डॉग नहीं है।"

"अच्छा, तो क्या है?"

"कास्पर।"

"कास्पर तो नाम है, जानवर तो..."

"ओ गॉड पापा, यू आर सो..."

उसकी यही नॉनसेंस जिज्ञासाएँ हर रात को सुलाए जाने से पूर्व अनिवार्य रूप से सुनाई जाने वाली कहानियों का पीछा करतीं। मुझे बस चरित्र पकड़ा दिए जाते – फॉक्स और मंकी; लैपर्ड, लायन और गोट; पैरट, कैट, एलिफैंट

और भालू। भालू को छोड़कर सारे जानवरों को अँग्रेज़ी में ही पुकारे जाने की अपेक्षा और आदत। कहानी को कुछ मानदण्डों पर खरा उतरना पड़ता। मसलन, उसके चरित्र कल्पना के स्तर पर कुछ भी उछल-कूद करें मगर वायवीय नहीं होने चाहिए, कथा जितनी मर्ज़ी मोड़-घुमाव खाए मगर एकसूत्रता होनी चाहिए, कहानी का गन्तव्य चाहे न हो मगर मन्तव्य होना चाहिए, वह रोचक होनी चाहिए और आखिरी बात यह कि वह लम्बी तो होनी ही चाहिए।

आखिरी शर्त पर तो मुझे हमेशा गच्चा खाने को मिलता जिसे जीत के उल्लास में ऊँघते हुए करवट बदल कर वह मुझे चलता कर देती। मगर अब!

अब तो कितनी बदल गई है। कितनी तो घुन्ना हो गई है।

कोई बात कहो तो या तो सुनेगी नहीं या सुनेगी भी तो अनसुने ढंग से।

"आज स्कूल में क्या हुआ बेटा?" मैं जबरन कुछ बर्फ पिघलाने की कोशिश में लगा हूँ।

"कुछ नहीं," उसका रूखा दो-टूक जवाब।

"कुछ तो हुआ होगा बच्चे!"

"अरे! क्या होता?"

"मिस बर्नीस की क्लास हुई थी?"

"हाँ।"

"और मिस बालापुरिया की?"

"हाँ, हुई थी।"

"क्या पढ़ाया उन्होंने?"

"क्या पढ़ातीं? वही अपना पोर्शन।"

"निकिता आई थी?"

"आई थी।"

"और अनामिका?"

"पापा, व्हाट डू यू वांट?" वह तंग आकर बोली।

"जस्ट व्हाट्स हैपनिंग विद यू इन जनरल।"

"नथिंग, ओके।"

"आपके ग्रेड बहुत खराब हो रहे हैं बेटा।"

"दैट्स व्हाट यू वांट टू टॉक?"

"नो दैट इज़ ऑलसो समथिंग आई वांट टू टॉक।"

"कितनी बार पापा! कितनी बार!!"

"वो बात नहीं है, बात है कि तुम्हें हो क्या रहा है।"

"नथिंग।"

"तो फिर?"

"आई डोन्ट नो।"

"आई नो।"

और वह तमककर दूसरे कमरे में चली गई - मम्मी से मेरी शिकायत करने। मम्मी समीरा से आजिज़ आ चुकी है मगर ऐसे मौकों पर उसकी तरफदारी कर जाती है, मुख्यतः घर में शान्ति बनाए रखने की नीयत से वर्ना रिपोर्ट कार्ड या ओपन-डे के अलावा भी ऐसे नियमित मौके आते हैं जब उसे खून का घूँट पीकर रहना पड़ता है।

"ट्यूटर के बावजूद पिछली बार मैथ्स में चालीस में से बारह लाई थी। इस बार आठ हैं।"

"चलो, आगे मैथ्स नहीं करेगी।"

"ये आगे या अभी की बात नहीं है। जो क्लास में किया जा रहा है, किताब में है उसे पढ़ने-समझने की बात है।"

"ज्योग्राफी का भी वही हाल है।"

"क्या आठवीं की पढ़ाई इतनी मुश्किल हो गई है?"

"आगे क्या करेगी?"

"सबके बच्चे कुछ-न-कुछ कर लेते हैं, ये भी कर लेगी।"

"कैसे? सब इतना आसान है?"

"इतना मत सोचा करो!"

"लड़की का पिता होकर मैं नहीं सोचूँगा तो कौन सोचेगा? आगे कितना मुश्किल समय आने वाला है। अपने पैरों पर खड़े होने के लिए इसे कुछ तो करना पड़ेगा। हम हैं मगर हमेशा थोड़े रहेंगे। पता नहीं वे कौन माँ-बाप होते हैं जिनके बच्चे बोर्ड में टॉप करते हैं। आईआईटी-मेडिसिन करते हैं। अखबारों में जिनके सचित्र गुणगान होते हैं। यहाँ तो पास होने के लाले पड़ते हैं।"

"पास तो खैर हो जाती है।"

"हो जाती है, होम ट्यूशन्स के सहारे।"

"हमारे घरवालों को सरकारी स्कूल की फीस भारी लगती थी, यहाँ पब्लिक स्कूल में पढ़ते हुए होम ट्यूशन्स के बिना गुज़ारा नहीं।"

"तुम उसके मामले को अपनी तरह से क्यों देखते हो? व्हाई शुड योर अपब्रिंगिंग कास्ट शैडो ऑन हर लाइफ?"

मुझे निःशंक झिड़क दिया जाता है।

मैं स्वयं उस तरफ जाना नहीं चाहता मगर जिस तरह चीज़ें बिगड़ रही हैं, रहा भी नहीं जाता। ठीक है कि उसे सुख-सुविधाएँ नसीब हैं मगर बिगड़े तो नहीं। उस दिन कैमिस्ट्री की मिस रोडरिक्स ने बुलवा लिया। एक ज़माना था जब यह उनकी फेवरेट हुआ करती थी। उस दिन तो काट खाने को आ रही थीं।

"होम वर्क तो दूर, जर्नल तक पूरा नहीं करती है। क्लास में समीकरण-सन्तुलन खत्म हो गया है और यह आयरन का सिंबल 'आई' बना देती है। फिर आयोडीन कहाँ जाएगा?"

मुझे समझाते हुए ही मीरा समझदार और संयमी लगती है। जब खुद भुगतती है तो या तो उस पर हाथ उठा देती है या कुछ देर चीख-पुकार मचाकर मेरी नाकामी और तटस्थता को फसाद की जड़ करार देते हुए मुँह फुला लेती है। मैं तो रविवार को बमुश्किल उसका कुछ देख पाता हूँ, रोज़मर्रा में तो उसका काम मीरा ही सम्भालती है।

मगर मीरा भी कहाँ तक सम्भाले!

स्कूल तैयार होते समय रोज़ जूते और जुराबों की खोज मचती है क्योंकि गए रोज़ स्कूल से लौटकर बिना फीते खोले जूतों को जो उतारा तो एक कहीं फेंका, दूसरा पता नहीं कहाँ। पानी की बोतल हर हफ्ते के हिसाब से छूटती है। डब्बावाला लगा रखा है कि बच्चे को ताज़ा खाना मिल जाए मगर उसकी भी कोई कदर नहीं। किताबों को तो कबाड़े की तरह रखती है। अपन सेकण्ड-हैंड किताबों को भी अगले साल वालों को बढ़ा देते थे, ये नवम्बर-दिसम्बर तक नई किताबों के चिथड़े उड़ा देती है जबकि उनके कवर बाज़ार से चढ़वाए जाते हैं। ये कौन-सा ग्लोबलाइज़ेशन है कि हर निजी और मामूली चीज़ को आउटसोर्स कर दो - पहले बदलाव मगर बाद में एक मजबूरी के तहत!

वह सब भी ठीक है मगर बच्चा पढ़ तो ले! ये मैडम तो स्कूल से लौटकर घर में घुसी नहीं कि सीधे फेसबुक पर ऐसे टूटती है जैसे देर से पेशाब का दबाव लगा हो और घण्टों उसी पर लगी रहेगी। तब न खाने-पीने की सुध रहती है और न सर्दी-गर्मी लगती है। लोगों के बच्चे होते हैं जो स्कूल से आते ही सब काम छोड़कर होमवर्क में जुट जाते हैं, टीवी तक नहीं देखते और एक हमारी है...। जब खराब नम्बरों से ही डर नहीं तो होमवर्क

की क्या बिसात! मैं तो बस सुनता रहता हूँ कि इसके एक हज़ार से ज़्यादा फेसबुक फ्रेंड हैं। एक दिन बिना लॉग आउट किए कंप्यूटर बन्द कर दिया होगा। मीरा ने जब उसे चालू किया तो पुराना एकाउंट रीस्टोर हो गया। क्या-क्या तो अजीबोगरीब फोटो डाल रखे हैं। टेक्नोलॉजी ने तीतर के हाथ बटेर पकड़ा दी है। पता नहीं कितने और कहाँ-कहाँ के तो लड़के दोस्त बना रखे हैं। इस उम्र के लड़के भेड़िए होते हैं इसलिए लड़कियों को ही सम्भल कर चलना होगा। मगर यह तो रत्ती भर नहीं सुनती है। मैं उसके पास जाकर बैठूँ भी तो खट से कंप्यूटर को मिनिमाइज़ कर देगी या एस्केप बटन दबा देगी। न बेस्ट का मतलब पता है, न फ्रेंड का मगर बेस्ट फ्रेंड दर्जन भर हैं। मैं कुछ समझाने-चेताने लग जाऊँ तो अपनी ज़रा-सी 'हो गया' से मुझे झाड़ देगी। मुझे बहला-फुसलाकर एक ब्लैकबैरी हथिया लिया क्योंकि सभी फ्रेंड के पास वही है। मैंने सोचा इसके मन की मुराद पूरी हो जाएगी। अकेला बच्चा है, क्यों किसी चीज़ की कमी महसूस करे? आए दिन मोबाइलों के आकर्षक विज्ञापनों की कटिंग अपनी माँ को दिखाती थी। अक्सर मेरे मोबाइल को लेकर ही उलट-पुलट करती रहती थी, कुछ नहीं तो उस पर 'ब्रिक्स' या मेरे अजाने क्या-क्या गेम्स खेलती रहती। मगर आज तक हाथ मल रहा हूँ। उसके मोबाइल पर हर दम तो अब पासवर्ड का ताला जड़ा होता है। इसी से पता चलता है कि ज़रूर कुछ भद्दी हरकतों में शामिल होगी। सब कुछ पाक-साफ होता तो पासवर्ड की या उसके लिए इतना पज़ेसिव होने की ज़रूरत क्यों पड़ती?

उस दिन मैं ड्रॉइंगरूम में अकेला बैठा आईपीएल का मैच देख रहा था कि मीरा मेरे पास आई और चुप रहने का इशारा करके हौले-से बेडरूम में ले गई। समीरा सो चुकी थी। आज गलती से उसका मोबाइल डाइनिंग टेबल पर छूट गया था। सोते वक्त भी अमूमन वह उसे अपने तकिए के नीचे रखती है। साइलेन्ट मोड में। मुझे या मीरा को अधिकार नहीं है कि मोबाइल जैसी उसकी पर्सनल चीज़ों के बारे में ताक-झाँक या नुक्ताचीनी करें। आखिर इससे हमको क्या वास्ता कि वह कब, किससे, क्या बात करती है? बीबीएम यानी ब्लैकबैरी मैसेंजर सर्विस चालू करवा ली है। जितने मर्ज़ी मैसेज, फोटो या वीडियो भेजो। उस दिन के आए-गए सारे सन्देश पढ़ने में आ गए। यकीन नहीं हुआ कि अपना बच्चा ऐसी भाषा लिखता है। एक लफ्ज़ की स्पेलिंग ठीक नहीं थी। वासप, लोल, बीटीडब्लू, ओएमजी, टीटीवाईएल और जेके की भरमार थी। मीरा ने बताया कि ये सब क्रमशः व्हाट्स अप, लाफ आउट लाउड, बाइ द वे, ओ माई गॉड, टॉक टू यू लेटर और जस्ट किडिंग के लघु रूप हैं। खैर, यह सब तो चलो इस जनरेशन की व्याकरण है मगर इसके अलावा जो लिखत-पढ़त थी उसे

देखकर किसी को घटिया हिन्दी फिल्म के संवाद याद आ जाएँ। पहले फरज़ान नाम का कोई लड़का रहा होगा जिसके साथ इसका नाम जुड़ा था। थोड़े दिन पहले उसे चलता कर दिया है। आजकल दो और पकड़ लिए हैं; साहिल और साराँश। फेसबुक की अपनी प्रोफाइल पिक्चर के बारे में उनसे जबरन टिप्पणियाँ माँगती हुई। आधी बातों के सूत्र तो चित्र-संकेतों (स्माइलीज़) में धँसे होते हैं तो वैसे ही कुछ पल्ले नहीं पड़ता। विषय के तौर पर हिन्दी – अवर मदर टंग, यू नो – बहुत बोरियत भरी फालतू और मुश्किल लगती हो लेकिन सन्देशों की अदला-बदली के बीचों-बीच उसकी चुनिन्दा देसी गालियों का प्रयोग सारे करते हैं। जैसे यह कोई फैशन या जमानेसाज़ होने की बात हो।

एक बार की बात है जब नवी-मुम्बई के रास्ते शायद मानखुर्द में किसी जगह सुअरों को ढूँढ़-ढूँढ़कर कुछ खाते देखा था। बस शुरू हो गई।

"पापा, पिग्स क्या खाते हैं?"

"पॉटी," मैंने एक नज़र फिराकर स्टियरिंग पकड़े ही कहा।

"छी! क्यों?" एसी गाड़ी में बैठे हुए ही उसने उल्टी करने की मुद्रा बनाई।

"वो उनका खाना होती है, उसमें उनको बदबू नहीं आती है।"

"उस पॉटी को खाकर जो पॉटी करते हैं उसे भी खा जाते हैं?"

इस पुत्री-पिता संवाद की एकमात्र गवाह श्रीमती मीरा जोशी ने ऐन इस बिन्दु पर अपनी सख्त आपत्ति दर्ज़ करते हुए 'स्टॉप इट' कहा तो कुछ पलों के लिए उसका सवाल एक नाजायज़ सन्नाटे में टँगा रहा।

"नहीं," मैंने हौले-से 'ऑब्जेक्शन ओवररूल्ड' की मुद्रा में जवाब दिया।

"सूचनाधिकार के युग में मैडम आप सवालों से बच नहीं सकतीं। क्यों पापा?"

"अरे, अपनी पॉटी कोई नहीं खाता। गूगल पर सर्च करके देखना - एनिमल्स हू ईट देअर ओन शिट - शायद होते

भी हों...।" मैंने बात बिगड़ने से पहले बात को रफा-दफा किया।

कोई यकीन करेगा कि दो साल पहले तक ऐसी मासूम शरारती लड़की के भीतर अचानक क्या कचरा घुस गया है कि कुछ समझ में नहीं आ रहा है। कुछ बताती भी तो नहीं है – जैसे हम इस लायक ही न हों। माँ-बाप अभी न रोकें तो पूरा बिगड़ने में कितनी देर लगती है? पता नहीं और बिगड़ने को क्या रह गया है। मोबाइल के म्यूज़िक में फ्लोरिडा, ब्रूनो मार्स, एमेनिम, रिहाना, एनरिके, जस्टिन बीवर, एकॉन और पता नहीं किन-किन फिरंगी रैंक-चन्दों को भर रखा है। जब देखो तब ईयर-प्लग चढ़ाए रहती है। बेबी, टुनाइट आयम लविंग यू, लिप्स लाइक शुगर, डीजे गॉट अस फॉलिंग इन लव अगेन, इफ यू आर सेक्सी एण्ड यू नो क्लैप योर हैंड – को सुनने का मतलब क्या है। ज़रा कुछ बोलो तो कहती है इससे एकाग्रता बढ़ती है। एक दिन मैंने घेर-घार के पूछ लिया तो कहती है इनका कोई मतलब नहीं है। ये तो म्यूज़िक है। कोई भला आदमी बताए तो मुझे कि इसमें काहे का म्यूज़िक है? सारे गानों में वही एक-सा हो-हल्ला। कोई अल्फाज़ नहीं जो दिल पर ठहरे। कोई सुर नहीं, सब शोर ही शोर।

और देखो, फिर भी किस धड़ल्ले से कह देती है कि जब मुझे कुछ अता-पता ही नहीं है तो फिर मैं ऐसी इरिटेटिंग बातें क्यों करता हूँ।

सुबह की सैर पर रोज़ मिलने वाले एक परिचित बता रहे थे कि गए शुक्रवार की दोपहर को यह 'ब्लू हैवन' के लाउंज में किसी हमउम्र लड़के के साथ एक कोने में चाइनीज़ खा रही थी। मैंने घर पर पूछा तो मीरा ने बताया कि स्कूल से आने के बाद यह 'क्रॉसवर्ड' बुक स्टोर पर कुछ सहेलियों से मिलने की कहकर गई थी। उसने वहाँ ड्रॉप भी किया था। अब कहाँ 'क्रॉसवर्ड' और कहाँ 'ब्लू हैवन'? जब घर से जाती है तो कतई नहीं चाहती कि हममें से कोई उसे फोन करे। करो तो अक्सर उठाएगी नहीं। बाद में मोबाइल के साइलेन्ट मोड या टैक्सी की खड़-खड़ का बहाना कर देगी।

अपनी तरफ से प्यार-पुचकार के खूब आज़माइश कर चुका हूँ मगर नतीजा? वही ढाक के तीन पात। उस रोज़ बेचैनी के कारण नींद खुल गई। बिना रोशनी किए समीरा के कमरे की तरफ गया तो देखता हूँ

मैडम बीबीएम करने पर लगी हैं। रात के ढाई बजे! आग लग गई। रहा नहीं गया। बस हाथ उठने से रह गया। समझ में आ गया कि हम लोग के लाड़-प्यार का ही नतीजा है यह सब। पता नहीं रात में कब तक यह सब करती है, तभी तो रोज़ सुबह उठने में आना-कानी करती है। बस, मैंने मोबाइल ले लिया। मगर इसकी हिमाकत तो देखो! कहती है मैं उसका मोबाइल नहीं देख सकता! क्यों? टेल मी! व्हाट इज़ देअर इन दैट व्हिच आई - हर फादर - कैन नॉट सी? मीरा बीच में आ गई सो उसे अपना कोड-लॉक डालने दिया। किस दबंगी से तो मुँह लग लेती है जबकि सेब काटने की अकल नहीं है। उस दिन काटा तो कलाई में चाकू घुसेड़ दिया।

मुझे एक डर यह भी लगता कि जिन लड़कों के साथ यह बीबीएम पर रहती है, उनसे कहीं स्कूल के बहाने मिलती-जुलती तो नहीं है? इस उम्र का आकर्षण दिमाग खराब किए रहता है। मैंने कई दफा, स्कूल यूनिफॉर्म में, इसकी उम्र की लड़कियों को मरीन ड्राइव की पट्टी और आइनॉक्स के मॉर्निंग शोज़ से छूटते देखा है। कुछ समाजशास्त्री किस्म के लोग तो इन्हें 'टीनेज कपल' तक कहते हैं। इनके माँ-बाप यकीन करेंगे कि उनके पिद्दी से होनहार क्या गुल खिला रहे हैं? सीक्रेट वीडियो कैमरे से रिकॉर्डिंग करके आए दिन एमएमएस सरक्युलेट होते रहते हैं। एक्सप्रेस में ही पिछले दिनों रिपोर्ट थी कि नवयुग पब्लिक स्कूल की वह लड़की जिसने नौवीं क्लास में लुढ़क जाने के बाद खुदकुशी कर ली थी, पोस्टमॉर्टम के बाद पता चला कि गर्भ से थी। वह भी तो अपने माँ-बाप की इकलौती बच्ची थी। उसके माँ-बाप ने भी हमारी तरह पैदाइश-परवरिश के चक्कर में डॉक्टरों की दौड़-धूप की होगी, बढ़िया-से स्कूल में दाखिला दिलाने के लिए खूब ऊपर-नीचे हुए होंगे, स्कूल के ओपन डेज़ पर सब काम छोड़कर टाइगर मदर्स के बीच बारी आने पर क्लास टीचर के सामने किसी प्रविक्षार्थी की तरह डरे-सहमे पेश होते रहे होंगे, बुखार न उतरने या अज्ञात कारणों से पेचिश हो जाने पर दवाइयों के अलावा नज़र उतारकर तसल्ली की साँस भरी होगी, मध्य रात्रि में उसके कमरे में हौले-से रोशनी करके मच्छरों को चैक किया होगा...।

या फिर, इस दबड़ेनुमा फ्लैट में वे कभी सोच सकते थे कि उनको कोई कुत्ता (कास्पर को कुत्ता कहने में उन्हें समीरा के नाम का झटका लगा) भी पालना मंज़ूर होगा? जब कास्पर नहीं था, यानी तीन बरस पहले, तब हर गन्दे-शन्दे पिल्ले को खेलने के लिए उठा लाती। एक बादामी रंग की बिल्ली का छौना था जिसे उसकी माँ ने छोड़ दिया था या छूट गया था। उसे हमारे घर में शरण मिली। मगर तीन रोज़ में ही जब उसने सोफे के ऊपर, टेबल के नीचे और फ्रिज के पिछवाड़े को तरोताज़ा

होने का ज़रिया बनाया तो मैंने भी हाथ खड़े कर दिए। दो दिन तक तो वह छौना दिखता रहा -- कभी कार पार्किंग के पास तो कभी जेनसेट के पास। मगर तीसरे दिन वह नदारद था। किसी अभियान की तरह मुझे साथ लेकर उसकी ढुँढ़वायी मची।

"छोड़ बेटा, लगता है उसे किसी जानवर ने मार खाया है," कोशिश नाकाम रहने पर मैंने उसे समझाया।

"पापा, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि वह एक रात में पूरी बिल्ली बन गया हो? मैंने उसी कलर की बिल्ली बाजू वाली बिल्डिंग में देखी है।"

उसे किसी भी सूरत में छौने का न होना या किसी जानवर द्वारा मार डालने का गल्प मंज़ूर नहीं था।

"वो तो इतना छोटा था, उसे कोई क्यों मारेगा भला!"

"हाँ, यह तो हो सकता है। कई बार ऐसा हो जाता है। इस बार भी ऐसा ही हुआ है। अब घर चलें?" मुझे भरसक उसके साथ होना पड़ा।

इसी कोमल दीवानगी को देखकर ही तो कास्पर को लाना पड़ा। नामकरण के लिए भी कुछ मशक्कत नहीं करनी पड़ी क्योंकि महीने भर के जीव को पहली बार गोदी में दुलारते हुए उसके मुँह से निकला था, "पापा, काश इसके

'पर' होते, ये उड़ सकता!" और नाम हो गया कास्पर!

गूगल के परोसे सारे फिरंग नाम धरे रह गए।

मगर क्या हुआ?

सिर्फ पागलों की तरह खेलने-पुचकारने के लिए है कास्पर। एक भी दिन उसे रिलीव कराने नहीं ले जाती है। अखबार में अक्सर पढ़ता हूँ कि पेट्स बहुत बढ़िया स्ट्रेस-बस्टर होते हैं। खाक होते हैं। मेरा तो स्ट्रेस बढ़ता ही जा रहा है।

***

शाम को घर लौटा तो मीरा का

मुँह कुछ ज़्यादा ही उतरा हुआ था। थोड़े-बहुत मूड स्विंग्स तो उसे होते ही रहते हैं तो पहले तो मैं चुप्पी लगा गया। एक चुप्पी लाख सुख की तर्ज़ पर। औरतें किस बात पर कैसे रिएक्ट कर जाएँ कोई बता सकता है? मगर कुछ देर बाद उसने खुद ही आड़े-टेढ़े रास्ते पकड़ने शुरू कर दिए।

"आज इसके स्कूल गई थी," उसने यूँ कहा जैसे उस हवा के साथ अदावत हो जो मैं ढीठता से ले रहा था।

हवा में सन्नाटा था मगर यह सन्नाटा उस निस्तब्धता से हटकर था जो पति-पत्नी के खालिस अहमों की नीच टकराहट से किसी फाँस की तरह रह-रहकर चुभता है। समीरा का अजीबो-गरीब ढंग से फिसलता रवैया अब हम दोनों का, शुक्र है, साझा उद्यम-सा बन गया है।

अपने दफ्तर के काम की थकान की ओट में रहकर मैंने उसकी बात पर कुछ नहीं कहा तो उसने जोड़ा, "गई नहीं, इसकी टीचर ने बुलाया था।"

उसके कहे के आगे-पीछे एक बोझिल निर्वात तना खड़ा था।

"क्या हुआ? कोई खास बात?"

किसी डराती आशंका से मुठभेड़ की तैयारी में मेरा लरजता आत्मविश्वास जागृत-सा होने लगा।

"इट्स गेटिंग डेंजरस," उसकी भंगिमा पूर्ववत पथरीली थी।

"व्हाट? व्हाट हैपन्ड! क्या हुआ?"

"इसने स्कूल में खुद को मारने की कोशिश की..."

"अच्छा, कैसे?" बढ़ती बदहवासी तले मेरा तेवर तटस्थ होने लगा।

"पेन की नोक चुभाकर..."

मेरे चेहरे से जब जिज्ञासा सूखकर बदरंग हो गई तो उसने आलापना शुरू कर दिया... इतनी तो अच्छी टीचर हैं वह इसकी... केमिस्ट्री की मिस उमा पॉल बर्नीस। यूपीबी। कुछ दिन पहले तक वह इसकी फेवरेट थीं। अब इसकी दुश्मन हो गई हैं। और होंगी क्यों नहीं? दो-चार बिगड़ैल लड़कियों के साथ पीछे की सीटों पर बैठकर ये गन्दी-गन्दी पर्चियाँ पास करते थे। आज टीचर ने पकड़ लिया। सबसे ज़्यादा इसकी लिखावट में मिलीं! मैंने खुद अपनी आँखों से देखी हैं। टीचर का नाम 'अगली पगली बिच' कर रखा था। बतौर सज़ा इसे क्लास के बाहर पाँच मिनट खड़ा कर दिया। दो और लड़कियाँ थीं। कौन बर्दाश्त करता? इसमें इसे बड़ी हेठी लगी। बस, अन्दर आने के बाद अपनी हथेली पंक्चर कर ली। डेस्क पर खून की धार गिरी तो हल्ला मचा। मिस बर्नीस घबरा गईं और मुझे फोन करके बुलवाया। मैंने टीचर से माफी माँगी और रिआयत माँगकर इसे घर ले आई। घबरायी हुई थी या क्या, मगर इसका शरीर तप रहा था सो मैंने एक क्रोसिन देकर सुला दिया। तब से ही सोई पड़ी है। तुम मत कुछ कहना।

अवसन्न-सा होकर मैं मीरा को देखता हूँ। उसके होंठ खुश्क हुए जा रहे थे। पिछले दिनों लगातार तनावग्रस्त रहने से उसके भीतर का सब कुछ निचुड़-सा गया है। कब से वह खुलकर नहीं हँसी होगी। कभी ये तो कभी वो, कोई-न-कोई पचड़ा लगा रहता है। इस हालत में वह बोतल से जल्दी-जल्दी पानी के घूँट ऐसे निगलती है कि लगता है, बोतल डरावनी हिचकियाँ ले रही है। एक बोझिल अवसाद किसी घुलनशील द्रव्य की तरह उसकी शिराओं में उतर गया लगता है। हम दोनों के बीच इन दिनों एक मृतप्राय निष्क्रियता घर किए बैठी रहती है।

मुझे पता है कि इस समय उसका मनोबल बढ़ाते हुए मैंने उसे सहला-सा दिया तो वह ढहने लग पड़ेगी। इसलिए ऊपरी तौर पर ही उकसाता हूँ।

"इन टीचर्स को तो बात का बतंगड़ करने में मज़ा आता है। माँ-बाप की परेड निकालने में चुस्की लगती है। इसकी उम्र के सारे बच्चे शरारती होते हैं और जो नहीं होते हैं तो उन्हें डॉक्टर को दिखाना चाहिए। रादर दैन बीइंग ए स्पोर्ट दे आर देअर ऑनली टू किल द फ्लैमबॉएंस ऑफ चिल्ड्रन। और ये सब उस स्कूल का हाल है व्हिच इज़ सपोज़्ड टू बी अमंग द बेस्ट इन मुम्बई। पिटी। बाइ द वे, आज डिनर में क्या है?"

गृहस्थी का मेरा यह पन्द्रह साल का अनुभव है कि खाने-पीने के स्तर पर उतरते ही बहुत सारे छुटपुट मसले अपने आप हवा हो जाते हैं।

मगर मेरे इस प्रोप-अप से वह किंचित और जड़वत हो जाती है और पास में रखी समीरा की नोटबुक का आखिरी पन्ना खोलकर मेरी तरफ बढ़ा देती है।

"व्हाट!"

"सुसाइड नोट!!"

एक सदमा किसी संगीन-सा मुझमें डूब गया है।

आधा भरा हुआ पेज। उपनाम सहित ऊपर एक तरफ लिखा हुआ पूरा नाम। दूसरे कोने में साल सहित लिखी जन्मतिथि। उसके समानान्तर ठीक नीचे डेट ऑफ डेथ, जिसके सामने हाइफन लगाकर सिर्फ वर्ष लिखा है – वही जो चल रहा है। बस, 'फैसले' के दिन की तारीख भरी जानी है। दो-तीन जगह शब्दों की मामूली काटपीट वर्ना सब कुछ एक उम्दा कम्पोज़ीशन की तरह सोच समझकर लिखा गया पर्चा:

मैं जीना चाहती थी। मैंने कोशिश भी करी मगर मैं हार गई। क्या फायदा ऐसे जीकर जिसमें आप अपनी मर्ज़ी से जी नहीं सकते। मेरे पापा को तो कभी मुझसे ज़्यादा मतलब रहा नहीं। मम्मी भी वैसी हो गई हैं। सेल्फ ऑबसैस्ड। दोनों को मेरी किसी खुशी से मतलब नहीं। मोबाइल तक छीन लिया। मैं दोस्तों के यहाँ स्लीप-ओवर के लिए नहीं जा सकती हूँ। उन सबको

कितनी फ्रीडम है। मुझे तो बस पढ़ाई-पढ़ाई करनी होती है। पढ़ाई से मुझे चिढ़ है। मगर किसी को उसकी परवाह नहीं। मैं जानती हूँ कि ये सब जान लेने की पूरी वजह नहीं है मगर मेरे पास जीने की भी तो वजह नहीं है। अनामिका, यू आर माई BFF। आई विल मिस कास्पर।

पढ़ते-पढ़ते मेरे भीतर हाहाकार मचता एक दृश्य उभर रहा है – पहले उसके कमरे के दरवाज़े पर समीरा-समीरा नाम की घनघोर तड़ातड़ थापें, फिर पूरी वहशत के साथ दरवाज़े को धक्के से तोड़ना, बिस्तर के पास औंधी पड़ी कुर्सी, कमरे के बीचों बीच सीलिंग फैन से स्थिर लटका उसका कोमल बेजान शरीर, बेकाबू होकर सिर पटकती दहाड़ मारती मीरा, मिलने वालों का जमघट,... पुलिस... पोस्टमॉर्टम...

"ड्राफ्टिंग तो अच्छी है – कितनी कम गलती हैं।"

एक चुहुल के साथ जैसे मैं उस भयानक दुःस्वप्न से उबरने की चेष्टा करता हूँ। सहारे के लिए मीरा की तरफ फीकी मुस्कान छोड़ता हूँ मगर सब बेअसर।

उसकी आँखों में एक गहरा निष्ठुर अजनबीपन तिर आया है। जीवन के हासिल को जैसे कोई बेधमके चट कर गया हो। किसी पहाड़ी ढलान से उतरती गाड़ी के जैसे ब्रेक फेल हो गए हों और सामने एक डरावने, चिंघाड़ते अँधेरे के सिवा कुछ बचा ही न हो... क्या कोई जीवन इतनी बेवजह, कोई चेतावनी या मौका दिए बगैर इतनी आसानी से नष्ट किया जा सकता है? और क्यों...?

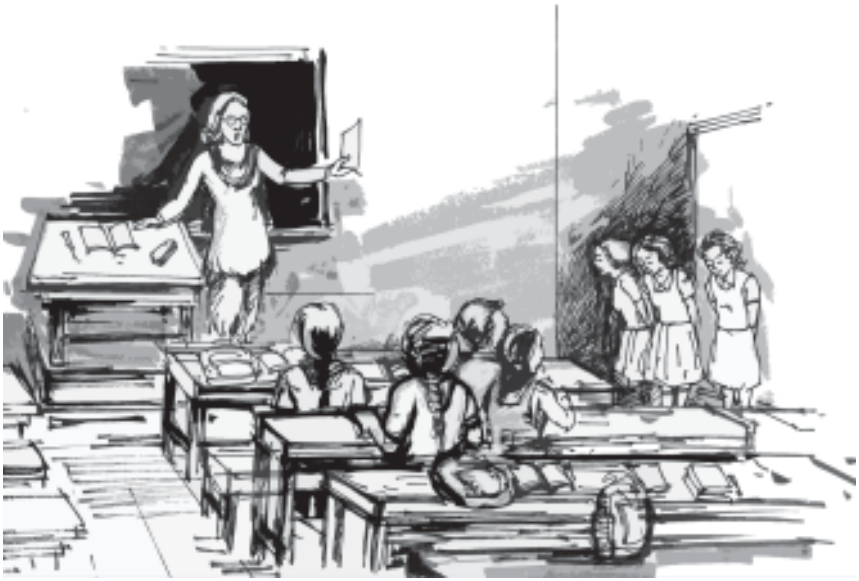

"सारी टीचर्स और क्लास को इसने डिक्लेयर कर रखा है इसके बारे में..."

वह अपनी मुर्दनी के भीतर से किसी कड़वे गिले की उल्टी करने को हो आई है।

मेरी बोलती बन्द है।

"जिस रोज़ तुमने इसका मोबाइल लिया था उस रात भी इसने किचिन में कलाई काटने की कोशिश की थी जिसे सेब काटते वक्त लगे कट का नाम दे दिया..."

उसका अवसाद किसी आवेग मिश्रित उबाल की शक्ल लेने को है।

"आई डोंट बिलीव दिस – ऐसा कैसे हो सकता है..."

पहली दफा मैं मामले की संगीनियत महसूस कर रहा हूँ – सामने कोंचते मनहूस घिनौने तथ्यों के कारण भी और अपने यकीन के बेसहारा और तिलमिलाकर अपदस्थ होने के कारण भी।

"हाथ कंगन को आरसी क्या," अधूरा मुहावरा कहकर वह मुझे सोती पड़ी समीरा के पास ले जाती है और हथेली को हौले-से खोलकर वह बिन्दु दिखाती है जो एक बुज़दिल कोशिश का सरासर प्रमाण है।

यानी उस नामालूम रोज़ - और आज नीमरोज़ - यह हुआ नहीं मगर बा-खूब हो सकता था कि आप अपने जीवन की चकरघिन्नी में शामिल होने के लिए आदतन अल्साए उठते और 'ब्लेड टू डैथ' जैसे डॉक्टरी निष्कर्ष तले ज़िन्दगी भर के लिए हाथ मलते रह जाते।

गॉश!

"मैं पता करके एक काउंसलर से आज मिल भी आई। उसके मुताबिक मामला सीरियस है। हम कोई और चांस नहीं ले सकते हैं..."

यानी जो चीज़ पहले टल गई, आज टल गई, वह हो सकता है कल न टल पाए!

मैं एक आवेग से भर उठता हूँ।

"कोई मुझे बताए तो सही कि हम क्या ज़ुल्म करते हैं इस पर! स्कूल के दिनों को छोड़ मैडम अपनी मर्ज़ी से दोपहर तक उठती हैं। रात को सोने से पहले ब्रश करना आज तक गवारा नहीं हुआ है। नतीजा, हर महीने दाँतों में कोई-न-कोई कैविटी लगानी-बदलवानी पड़ती है। उठते ही नेट और फेसबुक। मोबाइल तक में फेसबुक एलर्ट्स हैं। पहले बास्केटबॉल या साइकलिंग तो कर लेती थी लेकिन अब वह भी नहीं। गेम्स के नाम पर नेट या फिर रोडीज़। हर किताब और खाना बोरिंग लगता है। टॉयलेट जाने का कोई नियम-क्रम आज तक नहीं बना। मैं तो कहता हूँ वह सब भी ठीक है। कर लो। मगर यह क्या कि स्कूल के जर्नल तक को पूरा करने की फुर्सत नहीं है आपको। फिसड्डी होते चले जाने का अफसोस तो दूर, अहसास तक नहीं है। एक हमारा टाइम था जब हमारे बाप को ये तक पता नहीं होता था कि पढ़ कौन-सी क्लास में रहे हैं – सबजेक्ट्स क्या ले रखे हैं..."

"सत्या, प्लीज़। डोन्ट गेट इनटू दैट। तुम अपने टाइम से औरों को जज (मतलब आँकने से है) नहीं कर सकते..."

वह अपनी पस्त मानसिकता में रहते हुए भी एक परिचित गर्म नश्तर मेरे पनपते गुस्से पर रख देती है। वैसे सही बात तो यह है कि समीरा को लेकर जितनी दौड़-भाग, मेहनत-मशक्कत वह करती है, मैं नहीं। परिवार बड़ा था इसलिए बँटवारे में जो हिस्सा मिला उससे अपनी स्वतंत्र ज़िन्दगी नहीं चल सकती थी इसलिए अपना काम शुरू किया। काम एकदम नया। अनलिस्टड कम्पनियों के शेयर बेचने का... वे जो दसियों बरस से धन्धा तो कर रही हैं मगर जिनकी बैलेंस शीट को देखकर बैंकों और आम निवेशकों के मुँह में पानी नहीं आता है... जो अपने इवेंट मैनेजर अफोर्ड नहीं कर सकती हैं... कोई उड़ीसा में बॉक्साइट का उत्खनन करती है तो कोई उत्तरांचल में छोटे स्तर पर पन-बिजली बना रही है। ज़्यादातर कैश स्टार्व्ड इकाइयाँ। बड़ा काम नहीं है मगर आज बाँद्रा में सिर ढँकने को अपनी छत है। रात का खाना रोज़ घर पर होता है। किसके लिए किया यह सब? स्टेट बैंक की चाकरी में या तो मैनेजरी में फँसा रहता या आए रोज़ 'रूरल' कर रहा होता। मीरा क्या जानती नहीं है यह सब। बैंकों के डेबिट-क्रेडिट में चौदह साल खटाए हैं उसने। तीन साल पहले वी.आर.एस. लिया... कि समीरा पर पूरा ध्यान देगी। दिया भी खूब। कभी अलाँ-फलाँ कम्पाउंड की वेलेंसी निकालने का तरीका समझ-समझा रही है तो कभी फैक्टराइज़ेशन में जान झोंके पड़ी है; कभी ऑस्ट्रेलिया में होने वाली बारिश और मिट्टी के वर्गीकरण की सफाई कर रही है तो कभी सवाना की जलवायु को फींच

रही होती है।

"अपने टाइम से जज नहीं करूँ तो क्या इसके टाइम से जज करूँ? गाँव देहात तक के बच्चे एक-से-एक इंजीनियरिंग-मैनेजमेंट में जा रहे हैं, बिना किसी खानदानी सहारे के नौजवान लड़की-लड़के एक-एक विचार को तकनीकी में पिरोकर नए-नए उद्यम खड़ा कर दे रहे हैं... बिना मेहनत के हो रहा है यह सब... बिल गेट्स और आइंस्टीन की नज़ीरों से सांत्वना लेनी है तो बस यही कि उन्होंने भी अपने स्कूलों में कोई किला फतह नहीं किया... हद है..."

"सत्या लिसन," ज़रा रुक वह फिर बोली, "अभी यह सब कहने-सोचने का वक्त नहीं है। अभी तो हमें बस यह देखना है कि कैसे यह रास्ते पर आ जाए... आए रोज़ तरह-तरह की खबरें पढ़कर आजकल मेरा तो कलेजा बैठने लगा है।"

मुझे अपनी गलती का अहसास होता है।

कितने कम लफ्ज़ों के सहारे दर्द और परवाह अपने गन्तव्य पर जा लगते हैं!

कल-परसों ही तो खबर थी... भारत में खुदकुशी करने वाले बच्चों-विद्यार्थियों की तादाद पिछले पाँच बरसों में दो गुनी हो गई है। अकेली मुम्बई में हर वर्ष सौ से ज़्यादा स्कूली बच्चे अपनी जान ले लेते हैं। किसी विषय या क्लास में नहीं हुए पास तो जीवन समाप्त! डेढ़ करोड़ की आबादी के महानगर में सौ की संख्या मायने न रखती हो मगर सोचो, सौ से ज़्यादा परिवारों पर हर वर्ष क्या बीतती होगी। भोली, खिलखिलाती मासूम तस्वीरों के नीचे अखबार के श्रद्धांजली वाले पन्ने पर, कैसी टीस भरती, हाथ मलती ऋचाएँ सिरायी जाती हैं! कैसे अनवर्त्य (इर्रिवरसिबल) ढंग से कुछ ज़िन्दगियाँ

हमेशा के लिए बदल जाती हैं! आसमान तोड़ आर्तनादों को भी सांख्यिकी कितनी अन्यमनस्कता से अनसुना रख छोड़ती है!

क्या हम भी उन्हीं में शामिल होने की कगार पर हैं?

मैं समीरा के पास जाकर हौले-से लेट जाता हूँ। कुछ बरस पहले उसे लुभाने का मेरे पास एक रामबाण था - उसकी कमर खुजला कर।

"पापा खुजली नहीं हो रही थी... आप करने लगे तो होने लगी। क्यों?" किसी सुकून से लबरेज़ होकर वह कह उठती।

"ये पापा का जादू है।"

किसी अपने को सुख देना भी कितना सुख देता है।

"बताओ ना पापा, क्यों?"

"अरे तुम 'टेल मी व्हाई' में देख लेना... इट्स पापाज़ मैजिक..."

ऐसी कौतुक जीतें मुझे वास्तविक आह्लाद से भर देतीं।

मगर इन दिनों उसके ऊपर मनुहार का हाथ भी मैं तभी रख पाता हूँ जब वह बेसुध सो रही हो वर्ना नीमहोशी में भी वह 'पापा डोंट इरिटेट मी' की चीख से मुझे दफा कर देती है।

आज भी कर दिया।

मगर उसकी दुत्कार को जज़्ब करने के मेरे नज़रिए में फर्क था।

थोड़ी देर बाद वह उठती है और बिना कुछ बोले बाहर सोफे पर जाकर लेट जाती है।

मैं मीरा से उसकी पसन्द के सारे वाहियात खाने - नूडल्स-बर्गर वगैरा बनाने की ताकीद करता हूँ।

मीरा ने पहले ही पास्ता बना रखा है।

(...जारी)

ओमा शर्मा: अडिश्नल कमिश्नर, आयकर विभाग। हिन्दी के युवा लेखक हैं। मुम्बई में रहते हैं। कथाकार को उनकी कहानी 'दुश्मन मेमना' के लिए वर्ष 2012 के 'रमाकान्त स्मृति' सम्मान से नवाज़ा गया है। अँग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद भी करते हैं।

सभी चित्र: अनुपम रॉय: अम्बेडकर युनिवर्सिटी, दिल्ली से चित्रकारी में एम.ए. कर रहे हैं। शौकिया चित्रकार हैं।

रियो के साथ कुछ और प्रयोग

किशोर पंवार

एक पौधा दस प्रयोग लेखों में अंक 60 एवं 61 में हम रियो बायकलर (Rhoeo bicolor) से जीव विज्ञान के दस प्रयोग कर चुके हैं जो पत्तियों में रंग, स्टोमेटा, क्लोरोप्लास्ट, पत्ती की रचना, कोशिका में लवणों के रवे (रेफाइड्स), पत्तियों पर जलरन्ध्रों की पहचान, जीव द्रव्य कुंचन (प्लाज़मोलाइसिस), जीव-द्रव्य गति एवं परागकण की रचना और उनके विकास से सम्बन्धित थे। दूसरे लेख के अन्त में मैंने आपसे कहा था कि रियो के साथ ये प्रयोग अभी खत्म नहीं हुए हैं। और आपसे यह भी कहा था कि रियो के पौधों को अपने घर, स्कूल व कॉलेज की क्यारियों या गमले में उगा

लीजिए। मुझे पूरी उम्मीद है कि आप यह कर चुके होंगे। तो फिर तैयार हो जाइए इसके साथ कुछ और प्रयोगों का आनन्द उठाने के लिए।

लेकिन पहले रियो की कुछ बातें हो जाएँ। मैक्सिको से आया रियो भारत में सजावटी पौधा है। एक फुट ऊँचा रियो बागीचों में अक्सर देखा जा सकता है। उसका छोटे कद का मोटा तना पत्तियों के नीचे छिपा रहता है। तने में पर्व एवं पर्वसन्धी दिखाई देती हैं। ज़मीन से लगे तने से गोल घेरे में अपस्थानिक जड़ें निकलती हैं जिनकी आन्तरिक रचना एक बीजपत्री जड़ के समान होती है। पत्तियाँ बिना डण्ठल सीधे तने से लगी हुई होती हैं। पत्ती का आधार तने को लगभग आधा घेरे हुए शीथ प्रकार का होता है। और पत्तियाँ स्पाइरल क्रम में होती हैं। पत्तों में समानान्तर शिरा विन्यास पाया जाता है जो 25-30 से.मी. लम्बे और 3-4 से.मी. चौड़े होते हैं। पत्तियाँ मांसल और बीच में लगभग 1 मी.मी. मोटी होती हैं। आकार लैंसियोलेट है। इनका रंग ऊपर से गहरा हरा और नीचे से जामुनी होता है।

फोटो: किशोर पंवार

रियो पौधा - पत्तियाँ, फूल और तना

रियो का प्रजनन लैंगिक और अलैंगिक तरीकों से होता है। ज़मीन पर उगने वाले पौधे ज़्यादातर जड़ के फैलने से होते हैं। अक्सर आपको रियो के पौधे 20-25 फीट की ऊँचाई तक दीवारों की दरारों में भी दिख जाएँगे - ये पौधे हवा द्वारा पहुँचाए गए बीजों से उगे होते हैं।

तो अब चलते हैं प्रयोगों की ओर।

प्रयोग-11: फूलों की रचना

दो बीजपत्री फूलों की रचना का अध्ययन करने के लिए हमारे आस-पास बहुत-से फूल मिलते हैं। उनमें से कई की रचना का अध्ययन आपने शायद किया होगा जैसे बेशर्म, धतूरा, जासौन (गुड़हल), गुलमोहर आदि परन्तु एक बीजपत्री फूलों का अध्ययन करने हेतु अक्सर प्याज़ के फूलों या फिर गेहूँ का ज़िक्र आता है। मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि स्नातक स्तर की कक्षाओं में एक बीजपत्री फूलों का अध्ययन लगभग

रियो का फूल

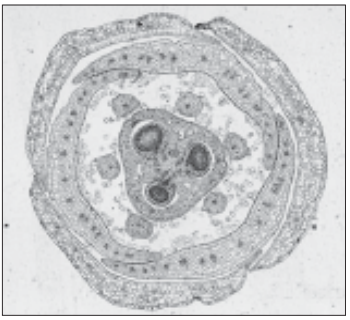

पुष्प कलिका की काट – एक बीजपत्री पौधे में 3-खानों की ओवरी

उपेक्षित ही रहता है। कहाँ से लाएँ प्याज़ के फूल या गेहूँ की बालियाँ। फिर गेहूँ के फूल वैसे नहीं हैं जैसे सामान्य एक बीजपत्री पौधे के होते हैं। तो लीजिए समाधान हाज़िर है -- रियो के फूल।

रियो में सफेद रंग के फूल रोज़ खिलते हैं - यह सालभर फूलता है। किसी एक फूल को तोड़ लें और फिर इनमें पंखुड़ियों, अंखुड़ियों की संख्या, उनका रंग आदि देखें। याद रहे जब पंखुड़ियाँ और अंखुड़ियाँ, दोनों एक रंग की और एक समान हों तो उन्हें परिदल कहते हैं। पुंकेसर देखे? कितने हैं? पराग-कोष का रंग, आकार, पुंकेसर के तन्तु से पराग-कोष का जुड़ाव,

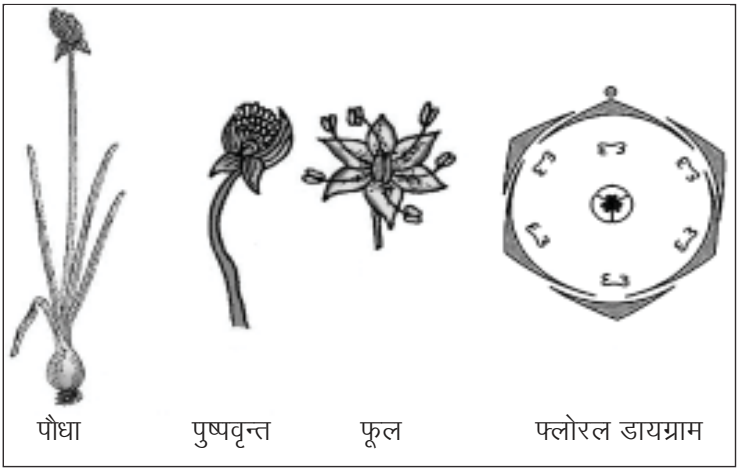

प्याज़ के पुष्प के चित्र

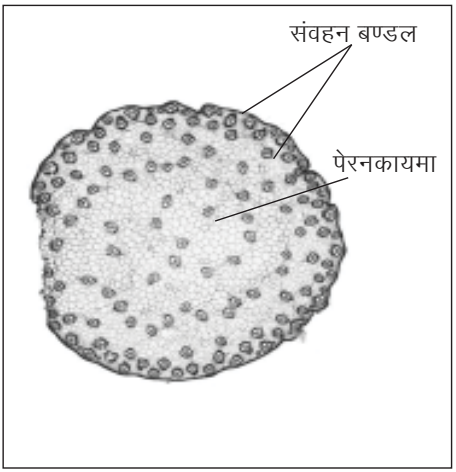

मक्के के तने की काट

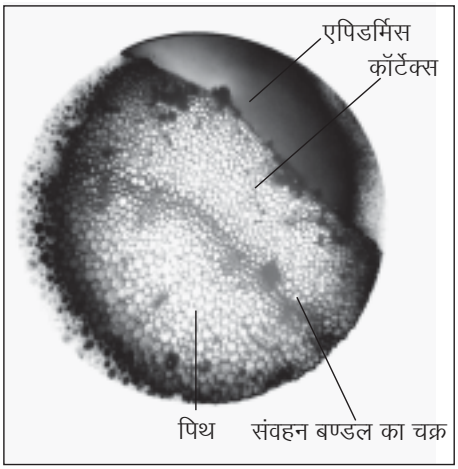

फोटो: किशोर पंवार

रियो का तना - 10x10 में

अण्डाशय की आड़ी काट की रचना एवं अण्डाशय में उपस्थित बीजाण्ड आदि की व्यवस्था आदि को ध्यान से हेंडलेंस या डिसेक्टिंग माइक्रोस्कोप से देखें। उनके चित्र बनाएँ और पिछले पेज पर दिए गए प्याज़ के फूल के पुष्प-चित्र से उसकी तुलना करें।

एक बीजपत्री ट्रायमेरस (त्रितयी) फूलों का अध्ययन करने के लिए यह एक अच्छा पौधा है।

प्रयोग-12: तने की रचना

रियो ही क्यों? रियो का तना काटने में भी आसान है जबकि मक्के की काट निकालना कठिन होता है क्योंकि वह काफी कड़क होता है। और ताज़े मक्के का तना आसानी से मिलता भी नहीं है। प्रयोगशाला में अक्सर संरक्षित तने ही प्रयोग हेतु उपलब्ध होते हैं। एक सामान्य तने की आन्तरिक रचना देखने के लिए इसकी एक पतली काट

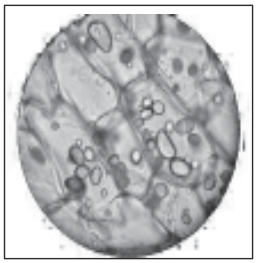

आलू में स्टार्च के कण

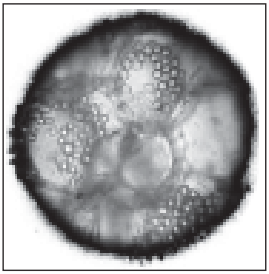

फोटो: किशोर पंवार

रियो में स्टार्च के कण

काटनी होगी। उसकी पानी या ग्लिसरीन में एक अस्थाई स्लाइड बनाकर माइक्रोस्कोप में देखें। एक बीजपत्री तने में मुख्य रूप से संवहन बण्डल बिखरे हुए पाए जाते हैं जबकि दो बीजपत्री तने में वे एक गोले में जमे दिखाई देते हैं। एक बीजपत्री तने के संवहन बण्डल में ज़ाइलम और फ्लोएम दिखते हैं परन्तु इनमें केंबियम नहीं पाया जाता। अतः उन्हें बन्द प्रकार के संवहन बण्डल कहते हैं। यह एक बीजपत्री तने की विशेषता है। यहाँ दिए गए मक्के के एक बीजपत्री तने की काट से आपके द्वारा तैयार की गई रियो के तने की काट का मिलान करें और देखें दोनों में क्या समानताएँ एवं असमानताएँ हैं।

प्रयोग-13: स्टार्च के कण

रियो के तने की काट देखने के कई फायदे हैं। एक बीजपत्री तने की रचना समझने के साथ आप इसमें स्टार्च के कण और अन्य क्रिस्टल्स यानी रवे भी देख सकते हैं।

इसके लिए तने की एक पतली काट को आयोडीन घोल से रंगें। माइक्रोस्कोप में पिथ वाली पेरनकायमा कोशिकाओं में ढेर सारे हल्के नीले रंग के स्टार्च ग्रेन दिखाई देंगे (चित्र)। इनकी तुलना आलू में पाए जाने वाले स्टार्च-कणों से करें। उन कोशिकाओं का चित्र भी बनाएँ जिनमें स्टार्च ग्रेन भरे हैं। यानी आलू नहीं तो क्या हुआ, रियो तो हर समय उपलब्ध है।

प्रयोग-14: प्लांट डायमंड

वैसे तो आपने बहुत सारे हीरे देखे होंगे, परन्तु आज आपको कुछ प्लांट डायमंड दिखाते हैं। आवश्यक सामग्री फिर वही – रियो के तने की काट।

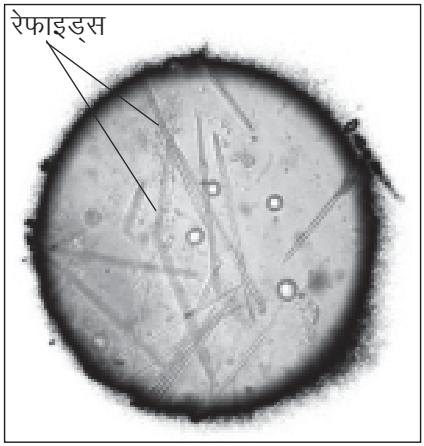

फोटो: किशोर पंवार

रियो में क्रिस्टल्स

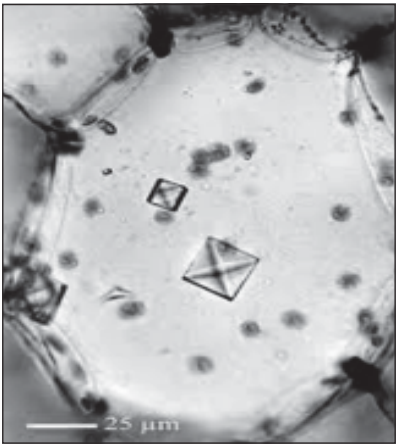

रियो के तने की कोशिका में हीरे जैसे टेट्राहेड्रल कण।

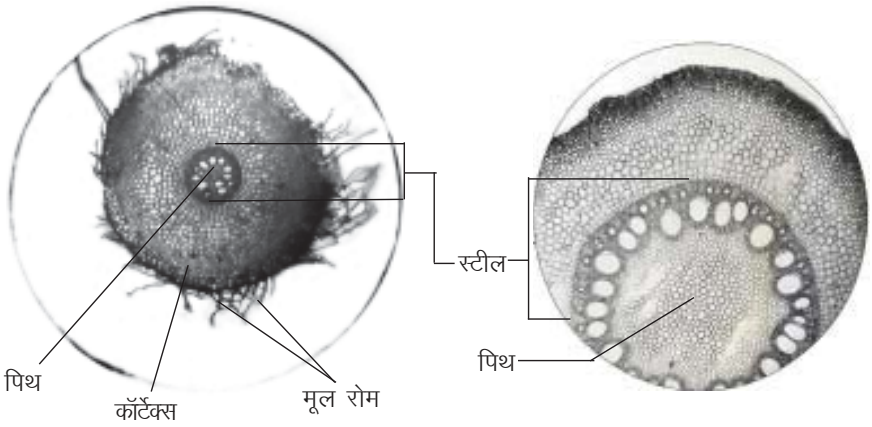

फोटो: किशोर पंवार

60 गुना आवर्धन पर रियो की जड़ की काट। इसमें मूल रोम दिख रहे हैं।

मक्के की जड़ की काट

पिथ की कोशिकाओं पर फोकस करें। कहीं-कहीं आपको रेफाइड्स व स्टार्च कणों के साथ टेट्राहेड्रल रोह्मबाइडल आकार के कुछ कण दिखाई दिए? बस इन्हीं को माइक्रोस्कोप के लो एवं हाई पॉवर में देखिए। माइक्रोस्कोप के नीचे लगे स्क्रीन (लाइट फिल्टर) से ज़रा लाइट कम-ज़्यादा करिए। आपको हल्के जामुनी रंग के बहुकोणीय चमकते त्रिआयामी (three dimensional) हीरे दिखेंगे।

यही हैं प्लांट डायमंड। इनका चित्र बनाइए। दरअसल ये क्रिस्टल केल्शियम ऑक्ज़ेलेट के हैं। उन्हें सेल इंक्लुज़न (inclusion) कहते हैं (चित्र)।

प्रयोग-15: जड़ की रचना

एक बीज-पत्री पौधों की जड़ की आन्तरिक रचना का अध्ययन करने के लिए भी रियो एक उपयुक्त पौधा है। ज्वार, मक्का, गेहूँ की जड़ें बहुत पतली होती हैं। और उनकी पतली आड़ी काट निकालना मुश्किल होता है। रियो की जड़ काफी मोटी और मुलायम होती है। इसकी पतली आड़ी काट बड़ी आसानी से बिना पिथ की सहायता से काटी जा सकती है। रियो की जड़ की एक पतली आड़ी काट की पानी में स्लाइड बनाकर सेफ्रेनिन नामक रंजक के ज़रिए उसकी आन्तरिक रचना माइक्रोस्कोप के लो एवं हाई पावर में देखें। कम आवर्धन में भी इसे देख सकते हैं। ऐसे में पूरी जड़ दिखाई देती है।

यहाँ सबसे बाहर की पर्त एक कोशिका मोटी एपिब्लेमा (epiblema) है जिस पर बहुत सारे एक-कोशीय मूल रोम (root hair) लगे हैं। एक-कोशीय मूल रोम जड़ों की विशिष्टता

है। जबकि तने में ये बहुकोशीय होते हैं। बाह्य त्वचा के नीचे पतली कोशिकाओं का बना कॉर्टेक्स है। केन्द्र में देखने पर एंडोडर्मिस से घिरी रचना स्टील कहलाती है (चित्र)। इसमें बहुत-से संवहन पूल (vascular bundle) दिखाई देते हैं। इनकी संख्या प्रायः आठ से अधिक होती है।

काट के केन्द्र में बड़ा-सा पिथ दिखाई देता है जो बड़ी-बड़ी पतली भित्ती वाली पेरनकाइमा कोशिकाओं का बना है। जड़ों के संवहन पूल अरीय (radial) प्रकार के होते हैं अर्थात् इनमें ज़ाइलम एवं फ्लोएम अलग-अलग त्रिज्याओं पर पाए जाते हैं। ज़ाइलम कोशिकाओं में छोटे सेल यानी प्रोटो-ज़ाइलम परिधि की ओर तथा बड़े मेटा-ज़ाइलम केन्द्र अर्थात् पिथ की ओर होते हैं (चित्र)। ऐसे ज़ाइलम ऊतक को एक्ज़ार्च (exarch) कहते हैं। यह गुण भी जड़ों का विशेष है क्योंकि तने के वेस्क्युलर बण्डल एन्डार्च (endarch) होते हैं।

आपके द्वारा तैयार की गई काट में इन ऊतकों और पर्तों को यहाँ छपे चित्रों की सहायता से पहचानिए।

रियो के साथ किए गए इन प्रायोगिक कार्य में आपने एक बीजपत्री पौधे के फूल की बनावट तथा जड़ एवं तने की आन्तरिक रचना की विशेषताएँ जानी हैं। अब तक किए गए प्रयोगों से हम पौधों, विशेषकर एक बीजपत्री की आकारिकी (morphology) एवं आन्तरिक रचना (anatomy) को समझ सकते हैं। पौधों की कार्यप्रणाली अर्थात् कार्यिकी (physiology) को समझने के लिए कुछ और प्रयोग फिर कभी। यानी फिल्म अभी खत्म नहीं हुई है। मेरे दोस्तो, आगे-आगे देखिए होता है क्या!

किशोर पंवार: होल्कर साइंस कॉलेज, इन्दौर में बीज तकनीकी विभाग के विभागाध्यक्ष और वनस्पतिशास्त्र के प्राध्यापक हैं। विज्ञान लेखन में गहरी रुचि।

RNI No. : MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, अरविन्द सरदाना की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन ई-10, शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल-462 016 द्वारा
एकलव्य से प्रकाशित तथा भण्डारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016 (म.प्र.)
से मुद्रित, सम्पादकः राजेश खिंदरी।